विकासपुरुष ऋषि हेम

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

जैन विश्व भारती प्रकाशन

आशीर्वचन

ऋषि हेम का नाम तेरापन्थ धर्मसघ के असाधारण सन्तो की प्रथम पक्ति मे है। उनका व्यक्तित्व विराट् था। वे आचार्य भिक्षु की नजरो पर चढे, यह उनकी विलक्षणता का प्रतीक है। आचार्य भिक्षु मनुष्य के महान् पारखी थे। उन्होने हेम को देखा और उनमे छिपी प्रतिभा को पहचान लिया। उनके मन में हेम के प्रति जो आकर्षण पैदा हुआ, वह अकारण नहीं था। जगल मे खडे-खडे लम्बे समय तक उन्होने हेम को प्रतिबोध दिया। एक दृष्टि से उन्होंने हेम को अपने समकक्ष स्थापित कर दिया। अपने उत्तराधिकारी युवाचार्य भारमलजी से उन्होने कहा--'तुम्हारे सामने अब तक हम थे, अब यह हेम हो जाएगा।' आचार्य भिक्षु के इन शब्दो मे कितना वजन है, अनुभव किया जा सकता है।

ऋषि हेम तेरापन्थ धर्मसघ मे विकास के प्रतीक बनकर आए। वे कई दृष्टियों से सघ मे विकास के आदिपुरुष थे। उनकी दीक्षा के बाद ही संघ मे साधुओ की सख्या का विस्तार हुआ। यही कारण है, जिसने उनकी दीक्षा की द्विशताब्दी मनाने की प्रेरणा दी। हेम-दीक्षा द्विशताब्दी के सन्दर्भ में उनका जीवन-वृत्त लिपिबद्ध कराने का सुझाव आया। यह काम कौन करे? इस प्रश्नचिन्ह पर साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा के नाम ने विराम लगा दिया। उसकी सृजनशील अगुलियो द्वारा थामी गई लेखनी सतत प्रवाही और शुभ है। उसको यह काम सौपकर हम दोनो निश्चिंत हो गए।

'हेमनवरसो' ऋषि हेम की प्रामाणिक जीवनी है। इसे सामने रखकर तथा अन्य स्रोतों से अपेक्षित सामग्री एकत्रित कर विकासपुरुष हेम की जीवनयात्रा लिखी गई है। प्रस्तुत पुस्तिका चतुर्विध धर्मसघ में अज्ञात प्रेरणा भरने और विकास के नए-नए आयाम खोलने मे सहायक बनेगी, ऐसी संभावना की जा सकती है। साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा समय-समय पर अपनी साहित्यिक सेवा से समाज को लाभान्वित करती रहे, यही शुभाकांक्षा है।

गणाधिपति तुलसी

आचार्य महाप्रज्ञ

जैन विश्व भारती, लाडनूं

२५ जनवरी १९९६

स्वकथ्य

तेरापन्थ धर्मसघ विकासशील धर्मसघ है। इसकी विकासयात्रा का प्रारभ वि स १८१७ मे हुआ। इसके सामने विकास के अनेक लक्ष्य थे। साधना, सगठन, सेवा अनुशासन, मर्यादा आदि विविध क्षेत्रो मे इसे नए क्षितिज खेलने थे। विकास के पुरोधा पुरुष थे स्वामी भीखणजी। उन्होने अनेक क्षेत्रो मे विकास की सभावना को सच मे बदलने के लिए पुरुषार्थ किया। उनका पुरुषार्थ फलित हुआ। पर और अधिक नई सभावनाओ को खोजने के लिए उन्हे कुछ सहयोगियो की अपेक्षा थी। नए पथ पर प्रस्थान करने के बाद पन्द्रह वर्षो तक उन्होने न्यूनतम साधन-सामग्री के आधार पर विकट परिस्थितियो को पार किया। महान् व्यक्तियो की सफलता का हेतु उनका आत्मबल होता है, उपकरण नहीं--यह अनुश्रुति उनके व्यक्तित्व को परखने का एक साफ-सुथरा आईना बन गई।

वि स १८३२ में उन्होने गंभीर चिन्तन और अनुभवो के योग से सघ का सविधान बनाया। सविधान-निर्माण के साथ ही उन्होने अपना उत्तराधिकारी निर्णीत कर लिया। इससे कुछ महत्त्वाकांक्षी साधुओ का अह आहत हुआ। उस व्यवस्था से वे सन्तुष्ट नहीं हुए। उनके विद्रोही तेवर ने फिर नई समस्याए खडी कर दीं। स्वामीजी ने सघ की नीति और गुणवत्ता के सामने सख्याबल को गौण किया। उत्तराधिकारी की नियुक्ति के बाद २१ वर्षो तक वे तेरह साधु भी नही जुटा पाए।

धर्मक्रान्ति के चौथे दशक मे सिरियारी के सुयोग्य मुमुक्षु हेम को समझाने मे उन्होने बहुत शक्ति लगाई। उनका प्रयास फला। मुमुक्षु हेम की मुनि हेम के रूप मे उपलब्धि हुई। स्वामीजी ने निश्चिन्तता का अनुभव किया और अपने उत्तराधिकारी भारमलजी स्वामी को भी निश्चित कर दिया। मुनि हेमराजजी का कर्त्तृत्व उनके दीक्षित होने से पहले ही सामने आ गया था। उनकी दीक्षा विकास का पर्याय बनकर तेरापन्थ के लिए वरदान बन गई।

वि सं २०५३ माघ शुक्ला १३ को मुनि हेमराजजी की दीक्षा के दो सौ वर्ष पूरे होने वाले है। उनकी दीक्षा का

ऐतिहासिक मूल्याकन करते हुए गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी और आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने 'हेम दीक्षा द्विशातब्दी' आयोजित करने का निर्णय ले लिया। समारोह का प्रारूप सामने आया। करणीय कार्यों की दृष्टि से जो बिन्दु प्रस्तुत किए गए, उनमे एक बिन्दु था मुनि हेमराजजी के जीवनवृत्त का आलेखन। मुनिश्री के जीवन को निकटता से देखने वाले, उनके पास विद्यार्थी के रूप मे रहने वाले महामहिम श्रीमद् जयाचार्य ने आचार्यश्री रायचन्दजी की प्रेरणा से 'हेमनवरसो' लिखा। जयाचार्य द्वारा लिखे हुए नौ गीतो मे मुनिश्री के व्यक्तित्व और कर्तृत्व का यथार्थ चित्रण पाठक को उनसे पूरा परिचित कराने वाला है। उस कृति के रहते हुए मुनिश्री के बारे मे कुछ नया लिखा जाए, यह अपेक्षा ही नहीं थी। किन्तु उसकी भाषा राजस्थानी है और शैली पद्यात्मक है। राजस्थानी भाषा सब लोग नही समझ पाते। राजस्थानी कहलाने वाले भी उसके मर्म को समझने मे अक्षमता का अनुभव करते है। ऐसी स्थिति मे सरल हिन्दी मे मुनिश्री की जीवनी तैयार करने की बात सर्वमान्य हो गई।

तेरापन्थ धर्मसघ मे अनेक साधु-साध्वियो मे लेखन की अर्हता है। यह काम किसी को भी सौपा जा सकता था। पर मेरी कल्पना इससे भिन्न थी। उसके पीछे आधार भी था। जयाचार्य ने अपना विद्यागुरु मानकर जिनके बारे मे अपनी लेखनी चलाई, उनके सम्बन्ध मे परमपूज्य गुरुदेव या श्रद्धेय आचार्य श्री ही लिख सकते है--इस धारणा के कारण प्रस्तुत सन्दर्भ मे कुछ लिखने की मेरी मानसिकता ही नहीं थी। गुरुदेव का अनुग्रह हुआ। आचार्यवर ने कृपा की। मुझे लिखने का निर्देश मिला। मानसिकता की दिशा भिन्न और निर्देश की दिशा भिन्न। एक बार असमञ्जस की स्थिति पैदा हुई। पर निर्देश इतना प्राणवान् था कि असमञ्जस के पैर उखड गए। मानसिकता बदली। लिखने का सकल्प पुष्ट हो गया। संघ के लिए विकासपुरुष और इतिहासपुरुष मुनि हेमराजजी की दीक्षा द्विशताब्दी के अवसर पर उनके प्रति श्रद्धा समर्पित करने का यह एक रचनात्मक माध्यम था। इसलिए मन

मे नया उत्साह जागृत हुआ।

मुनिश्री के सम्बन्ध मे प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध करने के लिए सहायक सामग्री अपेक्षित थी। निम्न निर्दिष्ट ग्रन्थो का स्वाध्याय किया तो मुझे पर्याप्त स्रोत मिल गए।

	ग्रन्थ	लेखक
१	हेमनवरसो	जयाचार्य
२	हेमचोढालियो	जयाचार्य
३	भिक्खु दृष्टान्त	जयाचार्य-मुनि हेमराजजी
४	हेम दृष्टान्त	जयाचार्य-मुनि हेमराजजी
५	श्रावक दृष्टान्त	जयाचार्य-मुनि हेमराजजी
६	भिक्खु चरित	मुनि हेमराजजी
७	शासन-समुद्र भाग १ (ख)	मुनि नवरत्नमलजी
८	शासन-समुद्र भाग २ (ख)	मुनि नवरत्नमलजी
९	आचार्य भिक्षु धर्म परिवार	श्रीचन्द्रजी रामपुरिया

मुनि हेमराजजी का जीवन बहुआयामी था। श्रद्धा, समर्पण, त्याग, तपस्या, सेवा, ध्यान, स्वाध्याय, कष्टसहिष्णुता आदि तत्त्व उनकी आध्यात्मिक ऊंचाई के घटक थे तो तत्त्वजिज्ञासा, तत्त्वचर्चा, जनप्रतिबोध, विलक्षण स्मरणशक्ति, इतिहास की सुरक्षा, अध्यापनकौशल आदि तत्त्व उनकी बौद्धिक क्षमता के प्रतीक थे। उनकी विशिष्ट अर्हताए स्वामीजी की पारदर्शी दृष्टि से अनछुई नहीं रह पाई। उनकी दीक्षा तेरापन्थ धर्मसंघ के लिए कल्याणकारी, मंगलकारी और विकासकारी प्रमाणित हुई। सघ मे उनके प्रवेश से विकास की जो नई लहर आई, वह उन्हें विकासपुरुष बना गई। इसी यथार्थ को उद्‌घाटित करने वाला है प्रस्तुत पुस्तक का नाम--'विकासपुरुष ऋषि हेम'।

तेरापन्थ धर्मसंघ की प्रथम शताब्दी में कोई उत्सव या समारोह मनाया गया हो, ऐसा इतिहास नहीं मिलता। श्रीमज्जयाचार्य ने अपने समय में तीन महोत्सवों का प्रारम्भ किया। स्वामीजी

द्वारा लिखित अन्तिम 'मर्यादा पत्र' के आधार पर उन्होने मर्यादामहोत्सव की स्थापना की। स्वामीजी के स्वर्गारोहण दिन को प्रतिष्ठित करने के लिए चरमोत्सव मनाया। वर्तमान आचार्य के पदारोहण दिन को सघीय उत्सव का रूप देने के लिए पट्टोत्सव का शुभारम्भ किया। उनके बाद गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी के सान्निध्य मे तेरापन्थ की स्थापना के दो सौ वर्षो की सम्पन्नता के अवसर पर तेरापन्थ की जन्मस्थली केलवा मे 'तेरापन्थ द्विशताब्दी समारोह' की व्यापक स्तर पर आयोजना की गई। उसके बाद तो कई उत्सव और समारोह मनाए गए।

जयाचार्य के युग से अब तक जितने महोत्सव या समारोह आयोजित हुए, उनका सम्बन्ध आचार्यो अथवा सघ के विशिष्ट इतिहास के साथ रहा। किसी साधु या साध्वी को निमित्त बनाकर कोई भी समारोह नही मनाया गया। मुनि हेमराजजी तेरापन्थ के प्रथम सन्त है, जिनके दीक्षा दिन को सघ के लिए विकास का दिन मानकर इतिहास का गौरवमय पृष्ट बनाया जा रहा है।

स्वामीजी ने भाव दीक्षा स्वीकार की, उस समय साधुओ की सख्या तेरह थी। पैतीस वर्षो तक उस सख्या मे घट-बढ होती रही, पर तेरह की सख्या आगे नही बढी। मुनि हेमराजजी की दीक्षा के समय संघ में बारह साधु थे। मुनिश्री का नाम तेरहवा था। उसके बाद वह सख्या कभी घटी नहीं। उसमें उत्तरोत्तर विकास होता रहा।

विकासपुरुष की विकासयात्रा को बहुत अधिक विस्तार से लिखा जा सकता था, किन्तु उनके जीवन-प्रसग इतने जीवत है कि वे सक्षिप्त होकर भी नए विकास की प्रेरणा भरने वाले है। परमाराध्य गुरुदेव और श्रद्धेय आचार्यवर के अनुग्रह और आशीर्वाद का सुफल है 'विकासपुरुष ऋषि हेम'। जैसे-जैसे मै लिखती गई, साध्वी कल्पलताजी साफ-सुथरी और सुघड लिपि मे पाण्डुलिपि तैयार करती चली गई। परमाराध्य गुरुदेव ने उसका आद्योपान्त अवलोकन कर अनेक स्थलो पर मेरा मार्गदर्शन किया। आपका मार्गदर्शन और प्रोत्साहन मेरी साहित्यिक यात्रा मे प्रकाशदीप

बनकर आगे से आगे मेरा मार्ग प्रशस्त कर रहा है। आपकी कृपा का पाथेय ही मुझे अविश्रान्त भाव से इस यात्रा के अग्रिम पडावो तक पहुचा रहा है। मै जब तक लिखू, यह पाथेय मुझे इसी तरह मिलता रहे।

मुनि हेमराजजी के बारे मे लिखे गए ग्रन्थो के स्वाध्याय से पूरे लेखन कार्य मे बहुत सुविधा हो गई। उनके लेखको के प्रति आभार-ज्ञापन। पाण्डुलिपि के निरीक्षण और प्रूफसशोधन आदि मे मुनि मोहनलालजी (आमेट), साध्वी चित्रलेखाजी और साध्वी शुभप्रभाजी की पूरी संभागिता रही। विकास की अभिप्रेरणा यही है कि प्रत्येक रचनात्मक कार्य मे हमारी यह सभागिता की सस्कृति इसी तरह फलती-फूलती रहे।

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

२६ जनवरी १९९७

लाडनू

प्रकाशकीय

'तेरापंथ' जैन परम्परा में सर्वाधिक अर्वाचीन सम्प्रदाय है। पर सम्प्रदाय से भी अधिक यह एक विकासयात्रा है। आचार्य भिक्षु ने इस विकास यात्रा का मंगलाचरण कर उसका नेतृत्व किया तो उनकी उत्तरवर्ती आचार्य-परम्परा उस क्रम को आगे से आगे बढाती रहीं। सघ के नवमाधिशास्ता आचार्यश्री तुलसी (अब गणाधिपति श्री तुलसी) के नेतृत्व मे तो यह विकासयात्रा इतनी तीव्र गति से आगे बढी है कि वे विकास के प्रतीक एव पर्याय ही बन गए है। उनके सुयोग्य उत्तराधिकारी एव संघ के दसवे अधिशास्ता आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने उनके आचार्य-पदारोहण-दिवस को 'विकास-महोत्सव' के रूप मे स्थापित एवं परम्पर रूप मे मनाए जाने की उद्घोषणा कर इसी तथ्य को प्रकट किया है।

तेरापथ की इस विकासयात्रा मे यो तो सघ के प्रत्येक छोटे-बडे सदस्य की सभागिता जुडी हुई है, पर आचार्य भिक्षु के दाए हाथ एव चतुर्थ अधिशास्ता श्रीमज्जयाचार्य के शिक्षा गुरु मुनिश्री हेमराजजी स्वामी की सभागिता विशेष उल्लेखनीय है। वि स १८५३ माघ शुक्ला १३ को आचार्य भिक्षु ने उनको दीक्षित किया। उनकी दीक्षा धर्मसंघ के लिए अत्यन्त शुभ सिद्ध हुई। इतिहास के उल्लेखो से यह बहुत स्पष्ट है कि आचार्य भिक्षु द्वारा प्रारम्भ की गई 'तेरापंथ' की विकासयात्रा का सुव्यवस्थित रूप उनकी दीक्षा के बाद ही शुरू हुआ। दीक्षित होने के पश्चात् उन्होने अपने व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व से धर्मसघ के चहुमुखी विकास के लिए जो सतत और सुनियोजित प्रयत्न किया, वह अत्यन्त प्रेरक है। वि सं २०५३, माघ शुक्ला १३ को उनकी दीक्षा की द्विशताब्दी सम्पन्न हो रही है। इस पुण्य प्रसग को संघीय स्तर पर समारोहपूर्वक मनाने का निर्णय कर गणाधिपति श्री तुलसी एव आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने सम्पूर्ण तेरापथ धर्मसंघ की ओर से उनके प्रति अपनी विनम्र श्रद्धा एव कृतज्ञता समर्पित की है। इस अवसर पर उनके प्रेरक जीवन से जन-जन परिचित हो यह अपेक्षा महसूस की गई। यद्यपि उनका समग्र जीवन श्रीमज्जयाचार्य रचित 'हेम नवरसो' मे बहुत व्यवस्थित रूप मे उपलब्ध है और इससे इस अपेक्षा की पूर्ति भी हो सकती है, तथापि एक ऐसी कृति की विशेष आवश्यकता अनुभव की गई जो आज की पीढी

के लिये आज की भाषा मे उनके जीवन पर समुचित प्रकाश डाल सके। गणाधिपति पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी तथा आचार्यश्री महाप्रज्ञ के निर्देश से महाश्रमणी साध्वी प्रमुखाश्री कनकप्रभाजी ने 'विकासपुरुष ऋषि हेम' के रूप मे इस जरूरत को पूरा किया। एक सिद्धहस्त लेखिका के रूप मे महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाश्री कनकप्रभाजी का नाम न केवल तेरापथ धर्मसघ एव जैन समाज मे ही प्रतिष्ठित है, अपितु हिन्दी-जगत मे भी अपनी पहचान बना चुका है।

धर्मसंघ के विशिष्ट साधु-साध्वी के चरित्र का प्रकाशन वह दीपक है, जो शत-शत दीपको को शताब्दियो तक प्रज्वलित कर सकता है। सघीय हित के लिए सकीर्ण स्वार्थों का त्याग, आचार एव मर्यादा के पालन मे सजगता, सयम और तप के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए स्व-पर कल्याण के राजमार्ग पर सतत बढते रहने की प्रेरणा आदि वे तत्त्व है जिनकी प्रेरणा ऐसे महापुरुषो के जीवन से सहज मिलती हैं। प्रस्तुत कृति मे लेखिका ने न केवल इन तत्त्वो को अपनी सृजन-कला से उभारने का प्रयत्न किया है, अपितु अपनी जीवन-कला से इन्हे अपने व्यक्तित्व मे उभार कर ऐसी कृति की रचयित्री के रूप मे अपने आप को योग्य सिद्ध किया है। जैन विश्वभारती को इस ऐतिहासिक एवं महत्त्वपूर्ण कृति को प्रकाशित कर उसे विकासपुरुष के चरणो मे अपनी सृजनात्मक श्रद्धा के रूप में समर्पित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, इसके लिए गणाधिपति श्री तुलसी, आचार्यश्री महाप्रज्ञ एव महाश्रमणीश्री कनकप्रभाजी के प्रति सस्था की ओर से मै विनम्र कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

इसके प्रकाशन मे आचार्यश्री महाप्रज्ञ प्रवास व्यवस्था समिति, बीदासर द्वारा आर्थिक अनुदान प्राप्त हुआ है। उनके इस सहयोग के लिए आभार व्यक्त करता हूँ।

आशा है, यह कृति धर्मसघ के प्रत्येक सदस्य को सघ-विकास मे योगभूत बनने की प्रेरणा देती हुई अपनी सभागिता निश्चित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएगी।

जैन विश्व भारती, लाडनूं
२ २ ९७

हनुमान चिण्डालिया
मत्री
जैन विश्व भारती

अनुक्रम

प्रतिबोध

व्यक्तित्व की झलक

प्रकृति से विनीत, स्वभाव से सरल, सहज, शान्त, सुसस्कारी, निपुण बुद्धि और व्यवहार मे जागरूक नौ वर्षीय किशोर। नाम था उसका हेम। सत्संग में उसकी रुचि थी। सन्तो के प्रति आदर का भाव था। तत्त्व का जिज्ञासु था। वह नियमित रूप से धार्मिक अनुष्ठान करता था। खेलकूद मे उसका विशेष आकर्षण नही था। उसके सवेग नियन्त्रित थे। वह अन्तर्मुखी व्यक्तित्व का धनी था।

किशोर हेम का परिवेश धार्मिक था। वह धर्म और दर्शन के गूढ रहस्यो को नही जानता था, पर धर्म के प्रति सहज श्रद्धाशील था। उसकी धार्मिक आस्था के केन्द्र एक क्रान्तिकारी धर्माचार्य थे। नाम था उनका स्वामी भीखणजी (आचार्य भिक्षु)। स्वामीजी के व्यक्तित्व मे कोई चुम्बकीय आकर्षण था। प्रथम दर्शन मे ही वह उनसे प्रभावित हो गया। वह उनके पास रहना चाहता था, उनसे तत्त्वज्ञान सीखना चाहता था और उन जैसा जीवन जीना चाहता था।

देखते-देखते हेम ने जीवन के पन्द्रहवे बसन्त मे प्रवेश कर लिया। वह स्वामीजी के प्रवचन सुनते समय गंभीर रहता था। उनकी तत्त्वचर्चाओ मे विशेष रस लेता था। अवसर मिलने पर जिज्ञासा करता था। अपनी जिज्ञासाओ का समाधान पाते समय उसकी आकृति पर आभा उतर जाती थी। वह अपने समवयस्को मे तत्त्व की चर्चा करने लगा। उसका कण्ठ मधुर और सुरीला था। वह अच्छा गायक था। उसके व्यक्तित्व मे असाधारण विलक्षणता थी। स्वामीजी को उस विलक्षणता का आभास होने लगा। हेम की इच्छा रहती थी कि वह अपने गुरु के उपपात मे बैठकर कुछ नया तत्त्व समझे। स्वामीजी भी उसमे निहित सभावनाओ को अभिव्यक्ति देना चाहते थे। उनकी आकाक्षा थी

कि हेम अपने जीवन की दिशा बदले और आध्यात्मिक विकास के शिखर पर आरोहण करे। आध्यात्मिक विकास के सोपान पर पग रखने की न्यूनतम अर्हता है वासना पर विजय। हेम ने समय-समय पर गुरु का उपदेश सुना। व्यक्तिगत रूप से उसे विशेष प्रेरणा मिली। वासना-विजय के प्रथम चरण मे उसने परस्त्री गमन का परित्याग कर दिया।

कर्तृत्व की पहली दिशा

पन्द्रहवर्षीय किशोर हेम कब यौवन की दहलीज पर खडा हो गया, पता ही नहीं चला। वह व्यापार की दृष्टि से पाली, बीलाडा आदि शहरो और कस्बो मे जाता। वहा व्यापार से अधिक समय धर्मोपदेश मे लगाता। लोगो को तत्त्व समझाता। उसका ज्ञान गभीर था। गहरी तत्त्वचर्चा मे भी वह कभी पीछे नही हटता। उसने अनेक व्यक्तियो को स्वामीजी का तत्त्वदर्शन समझाया। अनेक व्यक्तियो को श्रावक-व्रत ग्रहण करवाए। मौका मिलने पर वह साधुओ के साथ भी चर्चा करता था। स्थानको मे उसकी तत्त्वचर्चा आकर्षण का विषय थी। हेतु, युक्ति और दृष्टान्तो के द्वारा तत्त्वबोध देने वाले उस युवक का समकालीन तत्त्वज्ञो पर अमिट प्रभाव था।

चौबीस वर्षीय हेम स्वामीजी के प्रति पूर्णत समर्पित था। वह उनके एक आह्वान पर सब कुछ छोडकर उनका अनुगमन कर सकता था। पर उसके मन मे कोई द्वन्द्व था। वह उससे मुक्त होना चाहकर भी उसमे फसा हुआ था। उसने कई बार सोचा कि अपना मन स्वामीजी के सामने खोल दे। किन्तु वह सकुचा रहा था। वह अपने मन का बोझ उठाए उनके परिपार्श्व मे चक्कर लगा रहा था।

स्वामीजी को हेम की प्रतीक्षा थी। वे जानते थे कि हेम उनके पास आएगा। उनके पास पारदर्शी दृष्टि थी। उनकी दृष्टि हेम के भीतर पहुची। उन्होने उसकी दुविधा को देखा। वे चाहते तो एक झटके मे उसे दुविधा मुक्त कर सकते थे। उसको स्पष्ट

रूप से कोई निर्देश दे सकते थे। किन्तु उन्होने ऐसा नहीं किया। वे नहीं चाहते थे कि समर्पण की डोर से बन्धा हुआ हेम उनके निर्देश से अभिभूत हो जाए। वे उसे प्रतिबोध देना चाहते थे, द्वन्द्वमुक्ति की प्रक्रिया से गुजारना चाहते थे। उसके लिए वे अप्रत्याशित रूप मे उसके सामने उपस्थित हो गए।

आमने सामने

वि स १८५३ का वर्ष। मिगसर का महीना। प्रात काल का समय। अरावली पर्वतमाला की उपत्यका। मांडा और नीमली—इन दो गावो का मध्यवर्ती स्थान। अपनी धुन में लीन हेम जा रहा था। अचानक उसे एक गभीर घोष सुनाई दिया—हेमडा हम आ रहे है।' हेम ने मुडकर देखा। उसके पीछे स्वामीजी आ रहे थे। एक बार तो उसे अपनी आखो पर विश्वास ही नहीं हुआ। पर अविश्वास का कोई कारण नहीं था। स्वामीजी उसके बिल्कुल निकट पहुच गए। उनकी सौम्य आकृति पर दृष्टि टिकते ही हेम का रोम-रोम पुलक उठा। उसने बद्धाजलि हो विनम्र भाव से वन्दना की। अपने सौभाग्य की सराहना की। वह प्रसन्न था, पर उसकी आखो से विस्मय भी झलक रहा था। उस दिन प्रात काल ही तो वह माडा गाव मे उनको छोडकर आया था। स्वामीजी ने वहां से कुशलपुर की ओर प्रस्थान किया था। अचानक उन्होने रास्ता क्यो बदला ?

सामान्यत व्यक्ति चिन्तनपूर्वक क्रिया करता है। कभी-कभी अचितित और अकल्पित काम हो जाता है। स्वामीजी को कुशलपुर जाना था। उन्होंने उस दिशा मे विहार किया। शकुन अच्छा नहीं हुआ। वे आगे नहीं गए। उनके चरण नीमली की ओर बढे। उनकी गति तीव्र थी। हेम उनसे बहुत पहले चला था। फिर भी वह मार्ग में ही मिल गया। हेम हर्षविभोर होकर बोला—'स्वामीजी! आप यहां कैसे?' स्वामीजी ने कहा—हेम! आज तो हम तुम्हारे लिए ही आए है।' ये शब्द सुन हेम अभिभूत हो गया। वह इतना ही बोल पाया—'गुरुदेव! आपने बडी कृपा की'। स्वामीजी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए हेम के

पास शब्द नहीं थे। उस पर अयाचित अनुग्रह की वर्षा हुई थी। वह समझ रहा था कि स्वामीजी का आगमन अकारण नहीं है। कारण की खोज मे उलझकर वह समय खोना नहीं चाहता था। वह स्वामीजी के अमृत-वचन सुनने के लिए उतावला हो रहा था।

स्वामीजी ने देखा कि हेम का पात्र खाली है। वह भरा हुआ नही है और औंधा भी नहीं है। इस समय इसे कुछ भी कहा जाएगा, ग्रहण कर लेगा। वे उसकी आंखो मे झाकते हुए बोले--हेम ! तुम संशय के हिडोले में क्यो बैठे हो? तुम चिन्तनशील हो। एक निर्णय पर पहुचो। तुमने बचपन से ही अपने लिए जो सपना संजोया था, उसका क्या हुआ? तुम्हारा सकल्प पका नही है या तुम्हे अपना मार्ग प्रशस्त नहीं लगता? बोलो, मौन खोलो। आज तुम्हे एक निर्णय पर पहुचना है। तुम्हारे मन में जो भी बात है, उसे स्पष्ट करो। तुम तीन वर्ष से सयम स्वीकार करने की बात कर रहे हो, पर उसे क्रियान्वित करने का मुहूर्त्त अब तक नहीं आया ? वि सं १८५१ का चातुर्मास्य मुझे पाली करना था। तुम्हारी भावना देखकर मैने पाली का विचार बदला। तुम्हारे लिए वह चातुर्मास्य सिरियारी में किया। चार महीनो तक इतने निकट रहकर भी तुम कुछ नही कर पाए। तुम्हारी यह शिथिलता मुझे तुम्हारे प्रति संदिग्ध बना रही है। तुम्हारे मन मे अस्थिरता क्यो है? आज तुम संकोच छोडकर मुझे साफ-साफ बता दो कि तुम्हे सयम की साधना करनी है या नही?'

हेम के मन की धरती पर बचपन मे ही वैराग्य का बीजवपन हो गया था। धरती उर्वर थी। उसे खाद, पानी, हवा और ताप भी पर्याप्त मात्रा में मिलता रहा। इतनी सारी अनुकूलताओ मे बीज का अंकुरित होना निश्चित था। फिर भी बीच मे कोई अवरोध था, जिसे वह हटा नही पा रहा था। स्वामीजी ने हेम को झकझोरा तो वह थोडा दूर हो गया। हेम बोला--'स्वामीजी! मेरे मन के किसी भी कोने मे कमजोरी नहीं है। मुझे सयम

की साधना करनी है। आपके कर-कमलो से सयम रत्न स्वीकार करना है। यह मेरा पक्का निर्णय है। मै अपने निर्णय पर अटल हू।'

स्वामीजी को हेम के उत्तर से सन्तोष नहीं हुआ। उन्होने अनुभव किया कि प्रेरणा के जिस झोंके से तालाब का शैवाल हटा है, उसके रुकते ही शैवाल फिर आ जाएगा। इसे पूर्ण रूप से हटाने के लिए अधिक पुरुषार्थ की अपेक्षा है। उन्होने हेम के मर्म का स्पर्श करते हुए कहा—' हेम ! मै तुम्हारा अविश्वास नहीं करता। तुम्हारा आचरण बता रहा है कि तुम निश्चित रूप से साधु बनोगे। मै तो इतना-सा जानना चाहता हूं कि तुम मेरे जीवनकाल मे साधु बनोगे या मेरी मृत्यु के बाद?'

स्वामीजी के उक्त वचनो से हेम का मन अधिक आहत हुआ। स्वामीजी के प्रति उसका इतना अनुराग था कि वह उनकी मृत्यु की बात न सोच सकता था और न सुन सकता था। उसका भावुक मन स्वामीजी की सत्ता को शाश्वत मान रहा था। उनका कर्तृत्व वास्तव मे कालजयी था। उनका व्यक्तित्व भी काल से अप्रभावित था। स्वामीजी के कथन ने उनके अस्तित्व पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया। उनके अस्तित्व के दो आयाम थे—आत्मा और शरीर। आत्मा का अस्तित्व अपने स्वरूप मे स्थिर था। जन्म और मृत्यु की लम्बी शृखला आत्मा को अनात्मा नहीं बना सकती थी। किन्तु उसको पहचान देने वाला शरीर विश्वसनीय नही था। वह किसी भी समय धोखा दे सकता था। उस धोखे की कल्पना मात्र से व्यथित हेम बोला—'स्वामीजी ! आप ऐसी बात क्यो कर रहे है? आपके मन में मेरे प्रति किंचित् भी सन्देह हो तो आप मुझे सकल्प से बान्ध ले। साधु बनने के लिए वासना पर संपूर्ण विजय जरूरी है। मै उसके लिए साधना कर रहा हूं। आप मुझे नौ वर्षों के बाद अब्रह्मचर्य का त्याग करा दे।'

हेम की बात सुन स्वामीजी के नयनो मे एक चमक आई। उन्होने उसे उसकी इच्छा के अनुरूप संकल्प का कवच पहना दिया। हेम ने मुग्धभाव से स्वामीजी को देखा। पर उनके आनन

पर सन्तोष का भाव नहीं था। उनकी आकाक्षा बडी थी। हेम ने सोचा–स्वामीजी के मन मे क्या है? सभव है, उनको मेरा समर्पण अधूरा लगता है। संभव है उनकी अपेक्षा कोई दूसरी है। संभव है, वे मेरी परीक्षा करना चाहते है। मुझे स्पष्ट रूप से निर्देश न देकर वे मुझसे असंतुष्ट रहे, यह मेरे लिए असह्य है। मै क्या करूं? उनके मन को कैसे पढू? उनसे कैसे पूछू?'

हेम का ऊहापोह स्वामीजी से छिपा नही रहा। उन्होने अवसर को पहचाना। लोहा पूरी तरह से तप चुका था। उस पर चोट कर उसे यथेष्ट आकार दिया जा सकता था। स्वामीजी बोले–'हेम! तुमने अपनी ब्रह्मचर्य-साधना के संकल्प में नौ वर्षो की छूट रखी है, इस छूट का क्या अर्थ है? क्या तुम्हारे मन में सांसारिक भोगो का आकर्षण है? क्या तुम विवाह करना चाहते हो? तुम संकोच छोडकर अपने मन की बात साफ-साफ बता दो।'

हेम ने संकोच का जो वस्त्र पहन रखा था, स्वामीजी ने उसको उतार दिया। स्वामाजी से कुछ छिपाया जाए, यह मानसिकता हेम की नहीं थी। उसका व्यवहार देखकर लगता था कि वह सांसारिक सुखों से विरक्त है। उसका जीवन सादगीपूर्ण था। गृहवासी होने के कारण वह व्यापार करता था, किन्तु उसे व्यापार से अधिक रस तत्त्व-चर्चा में था। वह साधु की तरह जन-प्रतिबोध के काम में संलग्न था। वह अनेक बार स्वामीजी से कह चुका था कि उसे साधु बनना है। फिर भी वह विलम्ब कर रहा था। संभव है उसके पारिवारिक जन उसे विवाह से पहले साधु बनने की आज्ञा देने के लिए तैयार नहीं थे। सभव है, वह विवाह करके अपनी कडी कसौटी करना चाहता था। उसने स्वामीजी के सामने स्वीकार किया कि उनका कथन सत्य है। उसकी विवाह करने की भावना है।

प्रतिबोध के पल

स्वामीजी ने दो क्षण के लिए अपने नयन निमीलित किए। उनकी बन्द आखो मे हेम का भविष्य प्रतिबिम्बित हो गया। वे

हेम को उसका साक्षात्कार कराना चाहते थे। प्रतिबिम्बो की भाषा को वह पकड पाएगा या नही, इस सशय ने स्वामीजी को अपनी भाषा मे बोलने के लिए प्रेरित किया। उन्होने वात्सल्य उडेलते हुए कहा–'हेम! तुम्हारा दृढ सकल्प है कि तुम साधु बनोगे। साधु कब बनना है, इस सम्बन्ध मे अब तक सब कुछ अनिश्चित था। आज तुम इस निर्णय पर पहुच गए कि नौ वर्षो के बाद तुम कामभोग से विरत हो जाओगे। अब तुम्हे यह देखना है कि इन नौ वर्षो का समायोजन कैसे होगा ?'

हेम के मस्तिष्क मे कोई निश्चित योजना नही थी। उसे आगे की मजिल का आभास था, पर बीच के पडाव कहा होगे? इस विषय मे वह सर्वथा अनजान था। उसकी जिज्ञासु आखे स्वामीजी के आनन पर टिक गई। वह कुछ बोला नही, पर उसके मौन मे प्रार्थना थी। वह मार्गदर्शन चाहता था। स्वामीजी उसके मन को सहलाते हुए बोले–'हेम! अभी तक तुम्हारे विवाह को लेकर कोई सम्बन्ध पक्का नहीं हुआ है। इस समय की परम्परा के अनुसार तुम्हारी अवस्था भी कुछ अधिक हो गई। ऐसी स्थिति में एक वर्ष का समय विवाह करने मे बीत सकता है। विवाह के बाद एक वर्ष तक लडकी अपने पिता के घर रहती है। नौ मे से दो जाने के बाद शेष कितने वर्ष रहे ?'

हेम के हाथ जुडे थे। सिर झुका हुआ था। आखे जमीन को देख रही थी। स्वामीजी ने गणित का एक छोटा-सा सवाल पूछा था। हेम गणित मे इतना कमजोर नहीं था, पर स्वामीजी के सामने बोलने का साहस नही कर सका। उसकी मन स्थिति का आकलन कर स्वामीजी बोले–'नौ वर्षो मे से दो वर्ष बीत जाने पर सात वर्ष शेष रहेगे।' हेम ने कहा-'तहत् स्वामीनाथ! आपका वचन सत्य है।'

स्वामीजी मनोविज्ञान का गणित भी समझते थे। वे उसका प्रयोग करते हुए बोले–'जहा तक मै जानता हू स्त्री के साथ सम्पर्क की दृष्टि से दिन का समय वर्जित है। तुम्हारे भी दिन मे अब्रह्मचर्य सेवन के त्याग होने से आधा समय यो ही बीत जाएगा।

सात वर्षों मे साढे तीन वर्षों का समय रहेगा। धार्मिक व्यक्ति पर्व-तिथियों के दिन संयम की विशेष साधना करता है। तुम्हे भी संभवत पाच तिथियों के त्याग है। प्रत्येक महीने के दस दिन यो चले जाएंगे। इस क्रम से दो वर्ष और चार महीने का समय बचता है।'

हेम स्वामीजी की बात को ध्यान से सुन रहा था। स्वामीजी द्वारा इस प्रकार प्रतिबोध प्राप्त करना उसे अच्छा लग रहा था। स्वामीजी उसके मन को कुरेद रहे थे। वे अपने यौक्तिक कथन के साथ हेम को सहमत करते जा रहे थे। हेम अधिक बोलता नही था, पर स्वामीजी के कथन का प्रतिवाद करने वाला तर्क उसके पास नहीं था। इसलिए वह सुनने मे एकाग्र हो रहा था। स्वामीजी ने आखिरी युक्ति लगाते हुए कहा–'मोह का प्रबल उदय होने पर भी कोई मनुष्य पूरी रात अब्रह्मचर्य का सेवन नहीं कर सकता। तुम जैसे धार्मिक और जागरूक व्यक्ति के लिए तो वह सभव ही नही है। उसके लिए अधिकतम समय एक प्रहर से कुछ कम ही रहता है। यह पूरा गणित करने से स्पष्ट होता है कि नौ वर्षों मे केवल छह महीने का समय ही तुम्हारे हाथ मे रहेगा। हेम! तुम समझदार बनिए हो। मूर्ख किसान की तरह बाटी के बदले पूरा खलिहान कैसे दे सकते हो? थोडे से भौतिक सुखो के लिए नौ वर्षों का चारित्र कैसे खो सकते हो?'

स्वामीजी ने हेम के चेहरे पर दृष्टि टिकाई। उसके भाव रग बदल रहे थे। जैसे कोई गिरगिट रग बदलता है, वैसे ही हेम के भावों मे आरोह अवरोह का क्रम चल रहा था। पहले क्षण वहा इस्पाती संकल्प की दृढता थी तो दूसरे क्षण धूप-छाया-सी अस्थिरता भी थी। स्वामीजी ने अनुभव किया कि उनका काम अभी तक पूरा नही हुआ है। जब तक हेम अपने लक्ष्य के प्रति केन्द्रित नही होगा, निशाना नहीं साध सकेगा।

आचार्य द्रोण राजकुमारो को धनुर्विद्या का उच्च प्रशिक्षण देना चाहते थे। प्रशिक्षण से पूर्व उनकी अर्हता का परीक्षण करना था। राजकुमारों को अभ्यासभूमि मे बुलाया गया। वहां वटवृक्ष पर काठ

का पक्षी टंगा था। उसकी दाईं आंख को वेधना था। एक-एक कर कई राजकुमार आए, उन्हें लक्ष्य-वेध का मौका नहीं मिला। क्योकि वे पक्षी की आंख के साथ दूसरी चीजे भी देख रहे थे। अर्जुन ने निशाना साधा। उसे पक्षी की दाई आख की पुत्तलिका के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं दिया। द्रोण ने उसको बाण चलाने की आज्ञा दी। वह सफल हो गया।

स्वामीजी ने देखा कि हेम अब तक अर्जुन नहीं बना है। वह अपने लक्ष्य के साथ तादात्म्य स्थापित नहीं कर पाया है। उसे संयम जीवन के अतिरिक्त और भी कुछ दिखाई दे रहा है। उसकी दृष्टि को एक ही लक्ष्य में समर्पित करने के लिए वे बोले–'हेम! परिस्थिति का दबाव अनुभव कर कभी-कभी कोई मुमुक्षु व्यक्ति भी विवाह कर लेता है। विवाह के बाद वह एक दो बच्चों का पिता बन जाता है। उस समय उसे पत्नी का वियोग भी हो सकता है। पत्नी की उपस्थिति में बच्चों की जिम्मेवारी वह सभाल लेती है। किन्तु उसका वियोग होने के बाद चाहे-अनचाहे वह दायित्व पिता पर आ जाता है। मकडी जाला बुनती है, उसमें फसने के लिए नहीं बुनती। किन्तु अपने बनाए जाले में वह इस प्रकार फंसती है कि वहां से निकल नहीं पाती। यही बात उस मुमुक्षु व्यक्ति पर लागू होती है। एक ओर मुक्त होने का सपना, दूसरी ओर परिवार का तानाबाना। उसमें उलझने के बाद सपना केवल सपना ही रह जाता है। इसलिए दूरदर्शी व्यक्ति विवाह के बन्धन में बंधता ही नहीं है।'

स्वामीजी की प्रेरणा ने हेम को भीतर तक आन्दोलित कर दिया। उसने पिजरे में छटपटाते पछी की पीडा का अनुभव किया। बन्धन की स्थिति मे होने वाले कष्टप्रद अहसास को छूकर देखा। उसने दो क्षण के लिए आंखे बन्दकर अपने आपको तोला। मन मे किसी प्रकार की दुर्बलता नहीं थी। उसने आंखें खोलीं। गुरु-शिष्य के उस अन्तरंग संवाद के साक्षी मुनि खेतसी ने कहा–'हेम! स्वामीजी की तुम पर असाधारण कृपा है। वे तुम्हारा हित चाहते है। तुम्हारे जीवन मे ऐसा मौका फिर कब आएगा?

तुम सोचो, समझो और आजीवन ब्रह्मचर्य की साधना का सकल्प स्वीकार कर लो।'

मानसिक द्वन्द्व से मुक्ति

स्वामीजी के प्रबोधन से हेम की चेतना को गहरा झटका लग चुका था। उनकी आवाज कान मे पडे और दिल मे न उतरे, यह सभव नही था। उनके द्वारा फलाया गया गणित हेम के लिए नई अभिज्ञता का नया स्वाद था। मुनि खेतसी की सामयिक प्रेरणा ने स्वामीजी के कथन की स्वीकृति को अपरिहार्य बना दिया। किन्तु हेम भावुक नही था। उसकी सवेदनाओ पर अपना नियंत्रण था। उसने अपनी आखो से अपने भावी को देखने का प्रयत्न किया। उसने सोचा—मै अब तक अन्धेरे मे था। मुझे अपना आगे का रास्ता दिखाई ही नही दिया। मैने माता-पिता की इच्छा को अपनी इच्छा मानी। उन्होने अपने आगन मे बहू को देखने का सपना देखा। मेरी इस विषय मे किंचित् भी रुचि नहीं थी। किन्तु मुझ पर चारो ओर से दबाव पडा कि माता-पिता का सपना साकार होना चाहिए। मै प्रवाह मे बह गया। मैने अपनी रुचि को पिताजी की इच्छा के फ्रेम में समायोजित करना चाहा। मेरी आत्मा उसके लिए तैयार नहीं थी। फिर भी द्वन्द्व का मकडजाल मुझे उलझाता रहा। आज स्वामीजी ने मेरी आखे खोल दीं। गृहस्थी के जुऐ को उठाना मेरे वश की बात नहीं है। मुझे इस जाल मे नही फसना है। कोई कुछ भी कहे। आज मुझे अपना मार्ग निर्णीत कर लेना है।

सोने की इच्छा हो और बिछौना मिल जाए, गहरी भूख लगी हो और भोजन मिल जाए, प्यास से गला सूखता हो और ठडा पानी मिल जाए, उस समय व्यक्ति को कितनी प्रसन्नता होती है। हेम का मन साधना के लिए आतुर था। स्वामीजी ने उसकी प्यास बढाई। मुनि खेतसी का सहयोग मिला और वह बद्धाजलि खडा हो गया। उसकी विनम्र मुद्रा को संकल्प की तैयारी समझ स्वामीजी ने पूछा—' हेम! क्या कहते हो? तुम्हे ब्रह्मचर्य की साधना का संकल्प कराऊं?' हेम की आंखो का उल्लास बता रहा

था कि वह सकल्प लेने के लिए तैयार है। उसके रोम-रोम मे होने वाली सिहरन कह रही थी कि अब वह उतावला हो रहा है। उसने अपने आपको पूर्ण रूप से समर्पित करते हुए कहा–'स्वामीजी! मुझे सकल्प कराओ। स्वामीजी हेम को परख चुके थे। पर आजीवन ब्रह्मचर्य पालने का संकल्प कराने से पहले वे उसका एक बार परीक्षण करना चाहते थे। उन्होने कहा–' हेम! मेरे कहने से नही, स्वय सोचकर बताओ कि तुम्हारी मानसिकता क्या है?' हेम का आत्मविश्वास उसके चेहरे पर प्रदीप्त हो उठा। विकल्पो के व्यूह से बाहर निकलकर वह दृढता के साथ बोला-'स्वामीजी! विलम्ब असह्य है। आप मुझे जल्दी सकल्प कराए।'

स्वामीजी उसी क्षण की प्रतीक्षा मे थे। अपने श्रम को सार्थक देख उनकी प्रसन्नता आसमान छूने लगी। नमस्कार महामत्र का उच्चारण कर उन्होने परमेष्ठी पचक की साक्षी से हेम को आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने के लिए सकल्पबद्ध कर लिया। हेम की अन्धेरी राहो मे दीया जल उठा। उसका मार्ग प्रशस्त हो गया। उसने अनुभव किया कि उसके जीवन के सुनहरे क्षितिज पर पडा परदा उठ गया। वह बोला–'स्वामीजी! अब आप सिरियारी पधारे। इस संसार-समुद्र की लहरों के थपेडो से मै बेचैन हू। आप मुझे सयम की नौका प्रदान करे। उसके सहारे मै आसानी से समुद्र को पार कर सकूंगा।'

हेम की आतुरता इतनी बढ गई थी कि उसे एक-एक पल भारी लगने लगा। स्वामीजी ने उसको आश्वस्त किया। वे उसे सयम की नौका दे सकते थे, पर नौका चलाने की दक्षता भी आवश्यक थी। वे बोले–'हेम! कुछ समय प्रतीक्षा करो। अभी हम साध्वी हीराजी को सिरियारी भेज रहे है। तुम उनके पास प्रतिक्रमण सीखो और साधुचर्या का ज्ञान करो। मै ठीक समय पर वहा पहुच सकूंगा, यह मेरा लक्ष्य है।'

संकल्प की प्रसिद्धि

स्वामीजी के सहयोगी साधुओं मे एक उनके उत्तराधिकारी भी थे। 'युवाचार्य भारीमाल' के रूप मे उन्हे लोग पहचानते थे। स्वामीजी के प्रति उनका समर्पण अद्भुत था। स्वामीजी भी उन्हे पूरा अधिमान देते थे। नीमली पहुचने के बाद उन्होने हेम की ओर इगित करते हुए अपने युवाचार्य से कहा—'भारीमाल! अब तुम सर्वथा निश्चित रहो। अब तक तुम्हारे सामने हम थे, अब यह हेमडा है। चर्चा-वार्ता का कोई भी प्रसंग आएगा तो तुम्हे हेम का पूरा सहयोग मिलेगा।'

हेम ने स्वामीजी के मुह से यह बात सुनी। वह उनके प्रति श्रद्धा से प्रणत हो गया। स्वामीजी का उसके प्रति कितना विश्वास है, वे उसे युवाचार्य का सहयोगी बना रहे है। इस अनुग्रह की वर्षा से वह भीतर तक भीग गया। फिर भी उसके मन मे एक नई बात उठी। शायद वह अपने परिजनों और परिचितों को आश्चर्यान्वित करना चाहता था। उसने कहा—'स्वामीजी! मैने ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार किया है, इस बात को आप लोगो मे प्रसिद्ध मत करना।' स्वामीजी अवसरज्ञ थे। वे बोले—'हेम! मै लोगो के सामने ऐसी चर्चा नहीं करूंगा।' स्वामीजी का आशीर्वाद प्राप्त कर हेम नीमली से सिरियारी चला गया।

स्वामीजी नीमली से विहार कर चेलावास गए। वहां मुनि वेणीरामजी आदि कुछ साधु मिले। स्वामीजी ने हेम के साथ हुए वार्तालाप की सक्षिप्त जानकारी उन्हे दी। मुनि वेणीरामजी उस सूचना से अत्यधिक प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—'स्वामीजी! जन-प्रतिबोध मे आपकी कला बेजोड है। आपकी बाते इतनी यौक्तिक होती है कि उनका प्रतिवाद नहीं हो सकता। आपको व्यक्ति की पहचान है। आपके कथन को कोई टाल नहीं सकता। आपके निर्देश का कोई अतिक्रमण नहीं कर पाता। हेम पर आपकी दृष्टि देखकर मैंने भी बहुत चेष्टा की थी। किन्तु मेरी बात का उस पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। कच्ची मिट्टी को यथेष्ट आकार दिया जा सकता है। आपने तो हेम जैसे पके घडे को अपनी

इच्छा के अनुरूप ढाल दिया। आपकी बुद्धि बहुत निर्मल है।'

मुनि वेणीरामजी को स्वामीजी ने यह भी बता दिया था कि हेम अपने सकल्प की बात प्रच्छन्न रखना चाहता है। इस पर मुनि वेणीरामजी बोले–'स्वामीजी ! हेम ने आपसे कहा है कि उसके सकल्प की चर्चा लोगों मे न की जाए। आप इस विषय मे मौन रहे। हेम ने मुझे कुछ नहीं कहा। मै इस सुखद संवाद को छिपाकर क्यो रखू ? हेम जैसा खरा हेम संघ में आए और मै किसी से न कहूं, यह मेरे वश की बात नहीं है।' मुनि वेणीरामजी व्याख्यान देने के लिए गए। उन्होने प्रसगोपात्त हेम के सकल्प को प्रकट कर दिया। चेलावास के बहन-भाई इस सूचना से बहुत प्रसन्न हुए। उस दिन चेलावास मे चर्चा का मुख्य विषय यही रहा। कुछ भाई बोले–'हम तो पहले ही जानते थे कि हेम दीक्षा लेगा।' चेलावास के गलियारों को पारकर वह सवाद सिरियारी तथा आसपास के अनेक गावों तक पहुंचा। हेम की प्रतिभा से प्राय सभी लोग परिचित थे। उसकी दीक्षा को किसी ने स्वामीजी की पुण्यवत्ता के साथ जोडा, किसी ने जैन-शासन के उज्ज्वल भविष्य की संभावना के रूप में देखा और किसी ने हेम का भाग्योदय बताया। कुल मिलाकर हेम की दीक्षा का प्रसंग चारो ओर चर्चित हो गया।

पारिवारिक परिचय

स्वामीजी ने जिस विलक्षण और विचक्षण युवक को प्रतिबोध दिया, वह सिरियारी का रहने वाला था। उसके पिता का नाम था अमरोजी बागरेचा। उनकी पत्नी सोमा धार्मिक सस्कारो वाली महिला थी। पर सोमा की गोद सूनी थी। उसने एकाधिक बार बच्चो को जनम दिया। पर उसके बच्चे जीवित नहीं रहे। यह अभाव उसके मन मे सदा खटकता था। इसके कारण वह कभी-कभी अत्यन्त व्यथित हो जाती थी। उसके मन मे ममता की घटाएं उमडती रहतीं पर उन्हें बरसने का अवसर नहीं मिलता। उसकी यह पीडा कई बार आंखो के द्वारा बहकर बाहर आ जाती। पास-पडोस की महिलाएं उसके प्रति सहानुभूति

प्रकट करती। किन्तु उनकी सहानुभूति के शब्द दश बनकर उसकी पीडा बढा देते। फिर भी वह किसी के सामने अपना संतुलन नहीं खोती थी। वह कृत्रिम रूप से मुस्कराकर अपनी पीर को छिपाने का प्रयत्न करती।

गर्मी का मौसम। वैसाख का महीना। धूल भरी आधियो का सिलसिला। रात का समय। हवा निस्पन्द। सोमा अपने कक्ष मे सो रही थी। सहसा उसने एक देवविमान देखा। उस समय वह न तो गहरी निद्रा मे थी और न जाग्रत अवस्था मे। शायद वह सपना देख रही थी। स्वप्न मे देवविमान देख वह प्रसन्न हुई। उसे ऐसा अनुभव हुआ मानो कोई दिव्य पुरुष उसे पुत्र-जन्म का वरदान दे रहा है। पर पूर्व सन्तानो के वियोग की बात याद आते ही उसका मन व्यथा से भर गया। वह हाथ जोडकर बोली–'मेरी सन्तान जीवित नहीं रहती। मै क्या करूं?' उसने मधुर और गंभीर घोष वाली ध्वनि मे सुना–'चिन्ता मत करो। तुम्हारे एक पुत्र और एक पुत्री जीवित रहेगी।' सोमा हर्षविह्वल हो उठी। उसने कहा–'मै मां होकर भी अपनी ममता का उपयोग नही कर सकी। नियति की इस वंचना ने मुझे मातृ-सुख से वचित रखा। मेरे जीवन का यह अभाव भर गया तो फिर मेरी कोई आकाक्षा नहीं है।'

निराशा मे आशा का दीया जला तो सोमा अपने प्रति अधिक सजग/सावधान हो गई। वह अपनी होने वाली सन्तान का जीवन बचाने के लिए कुछ भी करने को तैयार थी। उसने अपना चिन्तन और व्यवहार बदला। खान-पान मे परिवर्तन किया। नमस्कार महामंत्र का जप प्रारंभ किया। वह अपने प्रत्येक नए दिन को मानसिक प्रसन्नता के साथ शुरु करती। अमरोजी भी उन दिनो सोमा का पूरा ध्यान रखते थे। समय अपनी गति से आगे बढ रहा था।

वि स १८२९ का वर्ष। माघ का महीना। शुक्ल पक्ष। त्रयोदशी का दिन। पुष्य नक्षत्र। आयुष्मान् योग। शुक्रवार। सोमा ने पुण्यशाली पुत्र को जन्म दिया। घर मे थाल बजा। मगल गीत

गाए गए। परिवार की सर्वाधिक गुणसम्पन्न महिला ने जन्मघुट्टी दी। बन्धुजनों ने बधाइया दी। बधाई देने वालो को यथोचित उपहार दिए गए। परिवार मे खुशियो का ज्वार आ गया। सोमा का सपना साकार हुआ। पुत्र को देखकर वह अपने अतीत को भूल गई। उसने अनुभव किया कि यह उसका पहला प्रसव है। प्रसव की पीडा नए सृजन की उपलब्धि के नीचे दब गई। बालक का प्रथम स्वाभाविक रुदन उसके स्वस्थ जीवन का साक्ष्य था। उसका हसता-खिलता चेहरा, अधखुली आखे, अष्टमी के चन्द्रमा-सा ललाट और नन्हे-नन्हे हाथ-पैर सोमा को निर्निमेष बना रहे थे। अमरोजी भी अपने पुत्र को देखने के लिए तरस उठे थे, किन्तु तत्कालीन परम्परा के अनुसार जच्चाघर मे पुरुष का प्रवेश निषिद्ध था। बच्चे को भी वहा से बाहर ले जाना सम्मत नहीं था। पुत्रदर्शन की लालसा मे अमरोजी के लिए एक-एक दिन बिताना भारी हो रहा था। किन्तु वे व्यवहार की लक्ष्मण रेखा को लाघने का दुस्साहस करने के पक्ष मे नहीं थे।

शुभ मुहूर्त्त मे नामकरण का उत्सव हुआ। परिवार के लोग एकत्रित हुए। अमरोजी पुत्र की सौम्य आकृति पर रीझ गए। उन्होने पुत्र को हाथो मे उठाया तो उन्हे ऐसा लगा मानो कोई अपूर्व खजाना मिल गया। नामकरण के प्रसग मे राशि और लग्न के आधार पर बालक के कई नाम सामने आए। उनमे से अन्वर्थ नाम 'हेम' को उसकी पहचान के लिए स्वीकार किया गया।

कुछ वर्षों बाद माता सोमा ने एक लडकी को जन्म दिया। उसका नाम रखा गया 'रत्तू'। हेम का उसके प्रति असाधारण अनुराग था। वह उसे अपनी गोद में सुलाता, थपथपाता और नींद दिला देता। रत्तू हंसती तो हेम का मन खिल जाता। उसे रोती देख वह स्वय रुआसा हो जाता। उसे घुटनों के बल चलना सिखाने के लिए कभी-कभी हेम भी घुटनो से चलता। रत्तू कुछ बडी हुई तो हेम उसे अगुली पकडकर चलाता। चलते-चलते जब वह थक जाती तो हेम उसे उठाकर गोद मे ले लेता। बहन-भाई दोनो साथ खाते, साथ खेलते और मस्त रहते।

हेम के माता-पिता स्वामी भीखणजी को अपना गुरु मानते थे। वे अनेक बार अपने दोनों बच्चो को साथ लेकर स्वामीजी के दर्शन करने जाते। कभी-कभी स्वामीजी स्वयं सिरियारी आ जाते। उनके दर्शन करने और निकट बैठने मे हेम को आह्लाद का अनुभव होता। स्वामीजी के पास लम्बे समय तक बैठकर भी वह थकता नहीं था। वे लोगो को समझाते तो वह भी उनकी प्रत्येक बात ध्यान से सुनता। जो बात समझ मे नहीं आती, स्वामीजी से पूछकर उसका समाधान पा लेता। स्वामीजी भी बालक हेम को गहरी आत्मीयता के साथ समझाते थे।

जैसे-जैसे हेम का स्वामीजी के साथ सम्पर्क बढ रहा था, वह उनके अधिक निकट होता जा रहा था। उनके सामीप्य मे उसे अनिर्वचनीय सुख मिलता। उपासनाकाल सम्पन्न होने पर घर लौटने का प्रसंग आता तो हेम अनमना हो जाता। उसकी इच्छा रहती थी कि वह स्वामीजी के पास ही बैठा रहे।

भक्ति और अनुराग का द्वन्द्व

एक ओर स्वामीजी के प्रति इतनी भक्ति, दूसरी ओर अपनी छोटी बहिन के प्रति तीव्र अनुराग। भक्ति और अनुराग की खींचातानी में भक्ति की विजय होने पर उसे आत्मतोष मिलता। वह भक्ति के शिखर पर आरोहण करने के लिए उत्सुक था, किन्तु अनुराग का बन्धन शिथिल नहीं हुआ था। इसलिए आरोहण के साथ अवरोहण का क्रम जुडा था। एक बार हेम के मामा बहन रत्तू को अपने घर ले गए। हेम का मन नहीं लगा। उसने मां से कहा—'रत्तू को बुलाओ।' मां बोली—'अभी तो बहिन ननिहाल गई है, कुछ बडी होने पर बहन का विवाह करोगे तो उसे ससुराल भी जाना पडेगा। तुम बहिन को कब तक साथ रखोगे?' मा के वचनो से हेम का समाधान नहीं हुआ। वह स्वामीजी के पास गया और बोला—'स्वामीजी! रत्तू ननिहाल चली गई। घर में मै अकेला हो गया। मन करता है कि सवार को भेज रत्तू को अभी बुला लूं।' स्वामीजी ने हेम को समझाते हुए कहा—'हेम! इन सांसारिक रिश्तो से मिलने वाला सुख स्थायी नहीं

होता। यहां हर संयोग पर वियोग की छाया रहती है। मोक्ष का सुख शाश्वत होता है। उसमें कभी विरह नहीं होता। तुम उस सुख को पाने का प्रयास करो।' स्वामीजी के वचनो से हेम का मोह कम हुआ। मोह कम होते ही उसे अपूर्व शान्ति की अनुभूति होने लगी।

हेम एक सौभाग्यशाली बालक था। उसे स्वामीजी जैसे गुरु मिले, यह उसके सौभाग्य की प्रथम रेखा थी। उसके मन में धर्म के प्रति सहज आस्था थी, यह उसके सौभाग्य की दूसरी रेखा थी। उसे साधु-साध्वियों की उपासना का अवसर मिला, वह उसके सौभाग्य की तीसरी रेखा थी। उसने तत्त्वज्ञान में रुचि ली। साधु-साध्वियो ने उसको थोकडे याद करा दिए। वह उनकी गहराई मे जाने का प्रयास करता रहता। तत्त्वज्ञान की गभीरता, समय-समय पर स्वामीजी की सन्निधि और प्रेरणा, सहज पापभीरुता आदि के कारण हेम के मन की धरती पर निर्वेद के अकुर उभरने लगे। उसका मन साधुधर्म की अनुपालना के लिए तरस उठा। श्रावक के तीन मनोरथो मे, दूसरा मनोरथ–कब मै मुण्ड हो, गृहस्थपन छोड साधुपन स्वीकार करूंगा–का वह बार बार अनुचिंतन करने लगा। कभी-कभी वह रात को स्वप्न मे अपने आपको साधु रूप मे स्वामीजी के निकट बैठा हुआ देखता। इससे उसे अत्यधिक प्रसन्नता होती।

स्वामीजी की कृपा और प्रेरणा से हेम की अन्तर्दृष्टि खुल गई। उसने अपने लक्ष्य का निर्धारण कर लिया। उसका गंतव्य मोक्ष था। वहा तक पहुंचने का मार्ग विषम था। उसने स्वामीजी से सुना कि सम्यक्त्व के दीवट में सवेग का तेल भरने से चारित्र का दीया जल उठता है। उससे मुमुक्षु का पथ आलोक से भर जाता है। हेम ने अपने भीतर झांका। वहा संवेग का भडार लगभग खाली था। वह स्वामीजी के उपपात मे अधिक समय लगाने लगा। उनके आभामण्डल में रहने से रासायनिक परिवर्तन हुआ। संवेग का सूखा स्रोत प्रवाहित हो गया। दीवट को तेल मिला। ज्योति प्रज्वलित हुई। रास्ते का अन्धकार दूर हुआ। हेम

को अपना गतव्य सामने दिखाई देने लगा। उसने माघ शुक्ला पूर्णिमा के बाद सब प्रकार की सावद्य–सपाप प्रवृत्तियों का परित्याग कर दिया। उसके गृहस्थ जीवन का अध्याय सीमित हो गया। उसने स्वामीजी से नया अध्याय खोलने का अनुरोध किया। स्वामीजी ने माघ शुक्ला त्रयोदशी के दिन हेम को दीक्षित करने की घोषणा कर दी।

रूपान्तरण

दीक्षा की तैयारी

हेम की जन्मभूमि सिरियारी उस दिन सुन्दर लग रही थी। गाव की महिलाओ और पुरुषों के मन खुशियो से उछल रहे थे। गाव के सारे रास्ते एक ही दिशा मे खुल रहे थे। बच्चो की टोलिया उछलती-कूदती हुई गाव के बाहर पहुच रही थी। पुरुषो के झुण्ड उल्लास के साथ बतियाते हुए जा रहे थे। महिलाएं और कन्याए मगल गीत गाने मे तन्मय हो रही थीं। गाव की सीमा पार करते ही उनका स्वामी भीखणजी से साक्षात्कार हो गया। अनेक साधु उनका अनुगमन कर रहे थे। जिस गांव को छोडकर वे सिरियारी आ रहे थे। उस गाव के कुछ श्रद्धालु जन भी उनके साथ थे। प्रसन्न वातावरण मे गांव मे प्रवेश हुआ। वहा उनके लिए कोई स्थानक या उपाश्रय नही था। किसी गृहस्थ का मकान खाली था। उसी मे उनका आवास हुआ। वहा प्रवचन करने के लिए भी स्थान अनुकूल था। स्वामीजी की प्रथम देशना मे ही शास्त्रामृत की गहरी वर्षा हो गई। प्यासे लोगो ने तृप्ति का अनुभव किया। मुमुक्षु हेम के उल्लास की कोई सीमा नहीं थी। वह उसकी आंखो के द्वार से बाहर झांक रहा था।

स्वामीजी सिरियारी पधारे तब तक वहा के सभी लोगो को हेम की दीक्षा के बारे मे अवगति मिल चुकी थी। गाव मे दीक्षा महोत्सव का आध्यात्मिक कार्यक्रम देखने के लिए सभी वर्गो के लोग उत्सुक हो रहे थे। हेम की प्रसन्नता का तो माप ही नही था। उसके लिए अब एक-एक दिन भारी हो रहा था। वह अत्यन्त आतुरता के साथ त्रयोदशी की प्रतीक्षा करने लगा। इस बीच परिजन और गाव के प्रमुख लोग उसे अपने-अपने घर भोजन के लिए आमन्त्रित करने लगे। गाव मे वरनोलो की धूम-सी मच गई। हेम जिस-जिस घर मे जाता, वहा एकत्रित भाई-बहिनो को आध्यात्मिक प्रेरणा देता। उसकी प्रेरणा से सैकडो लोगो ने विविध प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान किए।

पहला व्यवधान

इधर हेम का भाई (पिता के ज्येष्ठ भ्राता का पुत्र) शिकायत लेकर रावले मे गया। उस समय सिरियारी मे ठाकुर दौलतसिंहजी का शासन था। उनकी माता राज्य के कार्यों मे अच्छी रुचि लेती थी। जो लोग ठाकुर साहब तक पहुंचने मे कठिनाई का अनुभव या सकोच करते। वे मांजी साहिबा के पास पहुंच जाते। हेम का भाई भी सीधा वहीं गया। उसने माजी से कहा—हेम मेरे चाचाजी का इकलौता पुत्र है।

स्वामी भीखणजी हेम को जबरदस्ती साधु बना रहे है। इससे मेरा पूरा परिवार दु खी है। चाचाजी पर तो दु ख का पहाड ही टूट पडा है। आप दयालु है। हमारे परिवार पर अनुकम्पा कर यह दीक्षा रुकवा दे।'

माजी चाहतीं तो हेम को बुलाकर स्थिति का सही आकलन कर सकती थीं। किन्तु उन्होने हाथोहाथ फैसला दे दिया। उनके निर्देशानुसार दीक्षा पर रोक लगा दी गई। और स्वामीजी को सिरियारी छोडने का निर्देश दे दिया गया। यह बात हेम के पास पहुची। उसके रोम-रोम मे व्याकुलता भर गई। 'श्रेयासि बहुविघ्नानि—श्रेयस के साधक कार्यों मे विघ्न आते रहते है। विघ्न-बाधाओ के कारण ही तो उसकी दीक्षा मे विलम्ब हुआ था। जैसे-तैसे उसने माता-पिता की आज्ञा प्राप्त की और अपने मन के द्वन्द्व को समाप्त किया। तब कहीं दीक्षा का प्रसग बना। उसके बाद अचानक उपस्थित अवरोध ने उसको साहसी बना दिया। वह सीधा पचो से मिला। उन्हे सारी बात समझाकर वह उनके साथ माजी साहिबा के पास पहुचा। उस समय हेम वरनोले मे जाने के लिए तैयार हो रहा था। उसने नए वस्त्र और मूल्यवान आभूषण पहन रखे थे। हेम वैसे ही बहुत सुन्दर और आकर्षक व्यक्तित्व से सम्पन्न था। उस वेशभूषा मे उसका रूप और अधिक निखर गया। उसे देख माजी मुग्ध हो गई। वे बोलीं—हेम! तुझे क्या हो गया? यह अवस्था योग लेने की है क्या? अभी तो खुली आखो से संसार को देख। मै अपने पुत्र दौलतसिंह की शपथ

लेकर कहती हूं कि तू अपना इरादा बदल। मै अभी इसी वेशभूषा मे तेरा विवाह करा देती हू।'

हेम की बुद्धि प्रत्युत्पन्न थी। उसे कुछ सोचना नहीं पडा। उसने कहा–'माजी ! आपकी बात सुनकर लगता है कि आपको शादी-विवाह जैसे कामो से अधिक प्रेम है। आपसे मेरा निवेदन है कि हमारे गाव मे बहुत लडके-लडकिया क्वारपन में है। आप उनके विवाह की व्यवस्था करें। मुझे तो विवाह करने का त्याग है। माजी को हेम से ऐसे उत्तर की आशा नहीं थी। उसका दो टूक उत्तर पा एक बार तो वे निर्वाक् हो गई। हेम वहा से उठा और स्वामीजी के पास जाकर बैठ गया। उधर पचो ने माजी को सारी बाते समझाई। माजी ने जल्दबाजी मे दिए गए अपने आदेश को स्थगित कर दिया। उन्होंने स्वामीजी को गाव में ही रहने और निश्चित समय पर दीक्षा देने की प्रार्थना कराई। पचो ने उनकी भावना स्वामीजी तक पहुचा दी। हेम की दीक्षा मे उपस्थित एक व्यवधान दूर हो गया।

दूसरा व्यवधान

एक व्यवधान टला और दूसरा उपस्थित हो गया। उस व्यवधान का निमित्त था हेम की बहन रत्तू का विवाह। पारिवारिक जनो ने कहा–'हेम! तेरी दीक्षा बहन के विवाह के बाद होनी चाहिए। विवाह मे अधिक समय भी नहीं है। फाल्गुन कृष्णा द्वितीया को विवाह का मुहूर्त्त निकल चुका है। चार पाच दिनो की तो बात है। विवाह के बाद निश्चिंतता से दीक्षा हो सकती है।' हेम ने इस प्रस्ताव को एकदम अस्वीकार कर दिया। किन्तु कुछ परिजन उसके पीछे पड गए। उन्होने इतना अधिक आग्रह किया कि हेम गहरे चिन्तन मे खो गया।

हेम के मन में बहन के विवाह का कोई आकर्षण नहीं था। किन्तु परिजनो द्वारा बनाए गए फदे का रहस्य उसकी समझ में नहीं आया। उसके मन मे किसी प्रकार की छलना के भाव नहीं थे। इसलिए उसने परिजनो के व्यवहार को भी सामान्य रूप से

ग्रहण किया। उसने यह नही सोचा कि परिजन उसकी दीक्षा में बाधा डाल सकते है। उन्होने दीक्षा रुकवाने के लिए जो षड्यंत्र रचा, वह विफल गया। फिर भी उन्होने हार नही मानी। वह उनका दूसरा षड्यत्र था। वे जैसे-तैसे हेम को घर में रखना चाहते थे। एक बार दीक्षा का मुहूर्त्त टल जाए तो फिर कोई न कोई बहाना बनाकर उसे रोक लिया जाएगा। इस दृष्टि से पारिवारिक जनो ने अधिक दबाव डाला तो हेम का मन पिघल गया। उसने सोचा--पूर्णिमा के बाद मुझे छह जीवनिकाय के आरम्भ-समारम्भ का त्याग है। लेकिन घर मे रहने का त्याग नही है। वैवाहिक उत्सव और रीति-रिवाजो मे मेरी भागीदारी के लिए परिजनो का कोई आग्रह नहीं है। वे केवल मेरी उपस्थिति चाहते है। इसमे मुझे क्या आपत्ति है? महावीर भी अपने चाचा और भाई के अनुरोध को स्वीकार कर दो वर्ष घर मे रहे थे। मेरे सामने वर्ष का सवाल नही है। केवल पाच दिनो के लिए परिवार मे अप्रियता की स्थिति पैदा क्यो करू?

हेम की चिन्तन-प्रक्रिया पूरी होती उससे पहले ही एक बार फिर परिजनो का दबाव पडा। हेम ने उनकी बात मान ली। परिवार के लोगो को आशका थी कि स्वामीजी के निकट आते ही हेम का मन बदल जाएगा। इसलिए उन्होंने हेम से कहा कि वह अपनी स्वीकृति लिखित रूप मे दे। हेम बहुत बुद्धिमान था, दूरदर्शी था, किन्तु दीक्षा के प्रसंग मे वह आगे की बात नहीं सोच पाया। उसने लिख दिया कि वह फाल्गुन कृष्णा द्वितीया को बहन का विवाह हो जाने के बाद ही दीक्षा लेगा। परिवार के लोग प्रसन्न हो गए। हेम के मन पर उसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं थी।

स्वामीजी की प्रेरणा

पारिवारिक जनो को आश्वस्त कर हेम सीधा स्वामीजी के पास गया। उसने परिजनो के आग्रह और अपनी लिखित स्वीकृति की सारी बात उन्हे बता दी। स्वामीजी ने उसको समझाते हुए कहा--हेम! तुम बहुत भोले हो। परिवार के लोगो का तुम्हारे प्रति

मोह है। वे तुम्हे फंसाना चाहते है। तुम उनकी बातो मे कैसे आ गए ? ऐसे तो तुम अनर्थ करने जा रहे हो। तुम्हे एक दिन का भी अतिक्रमण नही करना चाहिए। वे लोग तुम्हारा त्याग तुडवाने के लिए ऐसा प्रयत्न कर रहे है। तुम एक बार पीछे हट गए तो फिर आगे बढना कठिन हो जाएगा। अब भी समय है। तुम सोचो और अपने आपको तोलो। तुम्हारे मन के किसी भी कोने मे दुर्बलता हो तो तुम समय बढा सकते हो। अन्यथा एक दिन भी खोना तुम्हारे हित मे नही होगा।'

स्वामीजी के प्रेरणा भरे वचनो ने हेम की आखे खोल दी। वह डिगते-डिगते सभल गया। स्वामीजी के प्रति कृतज्ञता प्रकट कर वह घर पहुचा। उसने परिजनो के सामने साफ-साफ शब्दो मे कहा-'अब आप मुझ से कोई आशा न रखे। मैने जो संकल्प कर लिया, उससे मुझे विचलित करने का प्रयत्न व्यर्थ है। मै त्रयोदशी के बाद घर में नही रहूगा। यह मेरा पक्का निर्णय है। मेरी दीक्षा निर्धारित समय पर ही होगी।' इसके बाद उसने वह परिपत्र भी फाड डाला। जिसमे बहन के विवाह तक घर मे रहना स्वीकार किया गया था। हेम के इस आचरण पर कुछ लोग सहमे, कुछ लोग आश्वस्त हुए और कुछ लोग हसते हुए बोले-'इसको भीखणजी ने समझा दिया है। अब यह किसी के चंगुल मे फसने वाला नहीं है।'

दीक्षा का उत्सव

स्वामीजी ने हेम की दीक्षा के लिए माघ शुक्ला त्रयोदशी का दिन निर्धारित किया। उसके जन्म का महीना यही था। तिथि भी यही थी। किसी ज्योतिषी ने नक्षत्र और योग पर ध्यान दिया। उस दिन पुष्य नक्षत्र था और आयुष्मान योग था। जन्म के समय भी यही नक्षत्र और यही योग था। जन्म और दीक्षा का ज्योतिष कुछ निश्चित ध्रुवो पर टिका हुआ था। ऐसा अवसर किसी सौभाग्यशाली व्यक्ति को ही उपलब्ध होता है। हेम का सौभाग्य अनिर्वचनीय था। सामान्यत शिष्य गुरु की शरण पाने के लिए

पुरुषार्थ करता है। गुरु शिष्य की प्रतीक्षा करे, उसे प्रतिबोध दें और अपनी शरण मे लेने के लिए प्रयास करे, ऐसे प्रसंग कम आते हैं। हेम पर गुरु के अनुग्रह की वर्षा हुई। वह अयाचित अनुग्रह, जिसने हेम की दिशा बदल दी। वह असीम कृपा, जिसका कोई ओर-छोर नहीं था। उस अनुग्रह और कृपा मे अभिष्णात होकर हेम कृतार्थ हो गया। उसका जन्म शुक्रवार को हुआ। दीक्षा के दिन वृहस्पतिवार था। महीना, तिथि, नक्षत्र और योग की अद्‌भुत एकरूपता। बार क्यो नहीं मिला ? लगता है कि वह प्रकृति का कोई सुचिंतित प्रयोग था। उसने दीक्षा के लिए गुरुवार चुना। गुरु की शरण मे जाने के लिए गुरुवार का सुयोग। हेम के सौभाग्य की पराकाष्ठा की प्रतीक थी वह अद्‌भुत युति।

वि सं १८५३ का वर्ष। त्रयोदशी का सुप्रभात। सिरियारी गांव का बहिर्वर्ती भाग। विशाल मैदान। सघन वटवृक्ष की छाया। स्वामीजी अपने शिष्यो के साथ गांव से चलकर आए। वे वटवृक्ष के नीचे रखे काष्ठपट्ट पर आसीन हुए तो ऐसा प्रतीत हुआ मानो अशोक वृक्ष के नीचे अर्हतों की प्रतिकृति का अवतरण हो गया। वटवृक्ष छतनार होता है। वह अपने नीचे आने वाले सब मनुष्यो और पशु-पक्षियो को छाया देता है, उसकी शीतल और पवित्र छाया मे स्वामीजी आसीन हुए तो सिरियारी से समागत हजारो-हजारों आखे वहां केन्द्रित हो गईं।

सिरियारी का प्रतिभा सम्पन्न युवक हेम विगत इक्कीस दिनो से अपनी दीक्षा का उत्सव मना रहा था। उन दिनो वह घर-घर मे जाता। लोग उसकी आरती उतारते, मगल गीत गाते और उसका मुंह मीठा करते। इधर हेम भी अपने नए जन्म की स्मृति को स्थायित्व देने के लिए लोगों को आध्यात्मिक प्रेरणा देता। अधिसख्य लोग अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार संकल्पों के पत्र-पुष्प अर्पित कर हेम का वर्धापन करते। उस दिन भी हेम की शोभा यात्रा मे हजारों लोग सम्मिलित थे। गाव से बाहर एक नए गाव के आबाद होने जैसा दृश्य उपस्थित था।

स्वामी भीखणजी ने उपस्थित जनसमूह को उद्‌बोधन दिया। भगवान महावीर द्वारा निरूपित मुनिधर्म और गृहस्थधर्म की मीमांसा की। उनकी वाणी मे ओज था और आभावलय में आकर्षण था। उनका इंगित प्राप्त होते ही हेम खडा हुआ। नए जीवन की कल्पना ने उसको रोमाञ्चित कर दिया। शरीर के रोमोद्‌गम और मन की पुलकन मे प्रतिस्पर्द्धा जागी। उसने स्वामीजी से अनुरोध किया–'अब आप जल्दी से जल्दी मुझे नया जीवन प्रदान करे।'

स्वामीजी ने हेम के माता-पिता तथा प्रमुख पारिवारिक जनो से दीक्षा की आज्ञा प्राप्त की। वहा उपस्थित हजारों लोगो को साक्ष्य बनाया। सभा में गहरा सन्नाटा छा गया। स्वामीजी ने आर्ष-वाक्यों का उच्चारण कर हेम को दीक्षित किया। उसे सब प्रकार के पापकर्मों से विरत किया। प्राणातिपात आदि निषेधात्मक भावो से उपरत किया। अतीत की आलोचना कराई। वर्तमान में जागरूकता का बोध पाठ दिया। जय-जय के उद्‌घोषो से धरती और आकाश गूंज उठे। हेम का रूपान्तरण हो गया। हेम के रूप मे पहचाना जाने वाला युवक मुनि हेमराज हो गया।

पगफेरा हेम का

वि स १८१७ चैत्र शुक्ला नवमी के दिन स्वामीजी ने एक धर्मक्रान्ति की थी। मारवाड के बगडी नगर मे उस धर्मक्रान्ति की सिद्धश्री लिखी गई। अजाने और अचीन्हे पथ पर कुछ चरण चले। कुछ चरणों ने उनका अनुगमन किया। कुल मिलाकर तेरह व्यक्तियो ने उस नई यात्रा मे सहगमन किया। यात्रा के प्रारंभ मे साथ होना एक बात है और अंत तक साथ रहना दूसरी बात है। कुछ कदम लडखडाए और पीछे छूट गए। कुछ नए व्यक्ति साथ आए। उनमे से भी कुछ बिछुड गए। नदी का प्रवाह गतिशील था। उस प्रवाह के साथ जो भी आए, उसमें समायोजित होते गए। कुछ व्यक्ति उस प्रवाह के साथ बहते-बहते शहीद हो गए। उनकी जीवन-यात्रा सफलता पूर्वक सम्पन्न हो गई। जो व्यक्ति उस गति से नहीं चल पाए, उन्होंने अपना मार्ग बदल

लिया। किन्तु उस लम्बी यात्रा में पुन. तेरह के अंक का स्पर्श नही हुआ। मुनि हेमराजजी की दीक्षा का वर्ष तेरापंथ स्थापना का छत्तीसवा वर्ष था। तब तक संघ मे पैतीस साधु हो चुके थे। कभी किसी सम्प्रदाय से पांच साधुओं ने आकर दीक्षा ली तो कभी चार साधु अन्य सम्प्रदाय मे चले गए। कभी दो गृहस्थ साधु बने तो कभी तीन साधु गृहस्थ जीवन मे लौट गए। इस क्रम से साधुओं की सख्या मे जोड-बाकी का हिसाब चलता रहा। वि सं १८५३ मे मुनि हेमराजजी की दीक्षा के समय धर्मसघ मे बारह साधु थे—स्वामी भीखणजी, भारीमालजी, सुखरामजी, अखैरामजी, सामजी, खेतसीजी, रामजी, नानजी, वेणीरामजी, वर्धमानजी, मायारामजी और सुखजी। तेरहवे अंक की पूर्ति के लिए हेम स्वामीजी के सामने खडा था। स्वामीजी ने आर्षवाक्यो का उच्चारण किया—'करेमि भंते ! सामाइय सव्व सावज्जं जोग पच्चक्खामि ।' हेम के जीवन में रूपान्तरण घटित हुआ। उसका 'हेम' नाम सार्थक हो गया। वह शुद्ध सोना बन गया। उसके आगमन के बाद सघ मे कभी साधुओ की संख्या मे ह्रास नही हुआ। यह एक बिन्दु ही मुनि हेमराजजी के महत्त्व को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है। वैसे उनका पगफेरा अनेक दृष्टियो से तेरापथ के विकास का पर्याय बन गया।

मुनिजीवन का बोधपाठ

मुनि हेमराजजी ने नए जीवन की धरती पर पदन्यास किया। उनका चिरपालित सपना साकार हुआ। स्वामीजी का पुरुषार्थ फला। जिनशासन के आकाश में एक तेजस्वी नक्षत्र का उदय हुआ। तेरापंथ धर्मसघ की विकास-यात्रा का प्रारंभ हुआ। चारो ओर प्रसन्नता का वातावरण था। स्वामीजी अपने शिष्य के व्यक्तित्व को परिपूर्ण बनाना चाहते थे। उन्होंने नए जीवन के प्रारंभ मे उसको पाथेय देते हुए कहा—हेम! अब तुम साधु बन गए हो। तुम्हे पग-पग पर सावधान रहना है। अपनी चर्या को गृहस्थो से सर्वथा भिन्न रखना है। तुम्हारे क्रिया-कलापो पर संयम का प्रभाव बना रहे, यह सावधानी बरतना है। तुम्हारे पापकर्म

का बन्धन न हो, उस विधि से व्यवहार का प्रवर्तन करना है।

मुनि हेमराजजी बालक नहीं थे। उन्होने वयस्क होकर सयमयात्रा का प्रारंभ किया था। उन्होने तेरापंथ के तत्त्व-दर्शन को गहराई से समझा था। पर वे साधु जीवन का ककहरा भी नहीं जानते थे। वे बोले—'स्वामीजी ! आपने मुझ पर बडी कृपा की। अपनी शरण में लेकर आपने मुझे निश्चित बना दिया। मेरे भटकते कदमो को आपने सही राह पकडा दी। मै आपका उपकार कभी नहीं भूलूगा। अब मेरे सामने एक ही लक्ष्य है कि आपके निर्देशानुसार अपने जीवन का निर्माण करूं। मै प्रमाद से बचता हुआ साधना-पथ पर आगे बढूं। इसके लिए मुझे आपके शिक्षावचनो की वैसाखियां चाहिए। आप मेरी प्रत्येक गतिविधि के नियत्रक है। आप मुझे नया जीवन देने वाले है। इस जीवन मे मुझे क्या करना है और क्या नहीं करना है ? कृपाकर मेरा मार्गदर्शन करे।'

मुनि हेमराजजी के निवेदन पर स्वामीजी ने आगमवाणी के आधार पर उनका मार्ग प्रशस्त करते हुए कहा-

जयं चरे जयं चिट्ठे जयमासे जय सए।
जयं भुजंतो भासंतो पावं कम्मं न बंधई।।

यतनापूर्वक चलने, यतनापूर्वक खडा होने, यतनापूर्वक बैठने, यतनापूर्वक सोने, यतनापूर्वक खाने और यतनापूर्वक बोलने वाला पापकर्म का बन्धन नहीं करता।

हेम! साधु शरीरधारी होता है। शरीर को धारण करने के लिए चलना, खडा होना, बैठना आदि क्रियाए आवश्यक है। इनमे यतना का ध्यान रखना है। तुम चलो तो शरीर प्रमाण भूमि को देखते हुए चलो। बैठो तो रजोहरण से स्थान का प्रमार्जन कर बैठो। सोने और जागरण के समय की नियमितता रखो। रात्रि मे भी स्वाध्याय, ध्यान आदि के समय निद्रा पर विजय प्राप्त करो। गोचरी मे सावधानी रखो। एषणा समिति के नियमो को अच्छी तरह समझकर उनके प्रति जागरूक रहो। खाने-पीने में सयम रखो। वाणी-सयम का अभ्यास करो। भाषा के अनावश्यक प्रयोग

से बचते रहो। बोलने की आवश्यकता हो तो धीरे और मधुर बोलने की चेष्टा करो। जिस समय जो काम करणीय है, उसे उसी समय सम्पादित करने का लक्ष्य रखो। समय का पूरा उपयोग करो। बडे साधुओ से प्राप्त निर्देश को 'तहत' कहकर स्वीकार करो। आग्रह से बचो। अपने प्रमाद का परिष्कार करने के लिए तैयार रहो। अपनी निश्रा के उपकरणो पर ममत्व मत करो, पर उनको संभालकर रखो। तुम्हारी निश्रा का कोई भी उपकरण इधर-उधर गिरा हुआ न रहे। प्रतिलेखन की विधि से उपकरणो का प्रतिलेखन करो। उत्सर्ग समिति के प्रति सजग रहो। त्रिगुप्ति की साधना करो। प्राथमिक रूप मे इतनी बातो का ध्यान रखकर तुम अपनी साधना में निखार लाते रहो।

स्वामीजी ने प्रथम बोधपाठ से ही मुनि हेमराजजी का मार्ग प्रशस्त कर दिया। उनके विवेकचक्षु का उद्घाटन कर उनको विवेकसम्पन्न और श्रुतसम्पन्न साधुओ के सरक्षण मे आगम सीखने का निर्देश दिया। वे दशवैकालिक, उत्तराध्ययन आदि आगम कठस्थ करने और उनके एक-एक पद्य का अर्थ समझने का प्रयास करने लगे। स्वामीजी ने उनकी प्रतिभा का आकलन कर कहा—हेम! तुम्हारी कंठ-कला अच्छी है। तुम पहले कुछ व्याख्यान याद कर लो। परोपकार का प्रमुख साधन व्याख्यान है।' मुनि हेमराजजी ने व्याख्यान कंठस्थ कर स्वामीजी की आज्ञा के अनुरूप जन-प्रतिबोध के क्षेत्र मे प्रवेश पा लिया। जन-प्रतिबोध के साथ-साथ वे अपने व्यक्तित्व-निर्माण के प्रति भी पूरे जागरूक रहे। दर्शन, ज्ञान और चारित्र—तीनो दिशाओ मे गतिशील रहकर उन्होने साधना, सेवा और संघ प्रभावना के कार्यों मे दक्षता प्राप्त की।

जीवन-प्रसंग

अनुग्रह और निग्रह

मुनि हेमराजजी की मेधा बडी विलक्षण थी। वे विनीत, विवेकसम्पन्न और गुरु-आज्ञा की अखण्ड आराधना में विश्वास करते थे। उनका दृष्टिकोण सम्यक् था, चित्त निर्मल था और स्वभाव सरल था। उनकी सरलता, समर्पण, विरक्ति और अन्तर्मुखता ने स्वामीजी को आकृष्ट किया था। दीक्षा की भावना होने पर भी उनके द्वारा और अधिक विलम्ब किया जाता तो वे साधुजीवन मे स्वामीजी के सान्निध्य को नहीं पाते। क्योकि उन्होने नौ वर्ष के बाद ब्रह्मचर्य का सकल्प स्वीकार किया था। यह घटना वि स १८५३ की है। स्वामीजी की जीवन यात्रा वि स १८६० तक चलती है। मुनि हेमराजजी का सकल्प वि स १८६२ के बाद था। स्वामीजी की अन्तर्दृष्टि जागृत थी। उन्होने बीज मे निहित वटवृक्ष को पहचान लिया था। उन्होंने एक निश्चित लक्ष्य बनाया, हेम को समझाया और उसका दीक्षा-सस्कार कर दिया। दीक्षित होने के बाद लगभग साढे छह वर्ष मुनि हेमराजजी पर स्वामीजी का साया रहा। उस अवधि मे उन्होंने चार चातुर्मास्य स्वामीजी के साथ किए।

चार वर्षों मे मुनि हेमराजजी ने स्वामीजी से बहुत कुछ सीख लिया। उन्होने छाया की तरह स्वामीजी का अनुगमन किया। रघुवंश महाकाव्य में महाकवि कालिदास ने नन्दिनी गाय की सेवा मे सलग्न राजा दिलीप के चरित्र का चित्रण करते हुए लिखा है—

स्थित स्थितामुच्चलित. प्रयातां,
निषेदुषीमासनबन्धधीर. ।
जलाभिलाषी जलमाददानां,
छायेव ता भूपतिरन्वगच्छत्।।

नन्दिनी खडी रहती तो राजा खडा रहता। नन्दिनी चलती तो राजा चलता। नन्दिनी बैठती तो राजा बैठता। नन्दिनी पानी पीती तो राजा जल ग्रहण करता। जिस प्रकार व्यक्ति की छाया उसका अनुगमन करती है, वैसे ही राजा दिलीप ने नन्दिनी का अनुगमन किया।

राजा दिलीप विशेष उद्देश्य से प्रेरित होकर नन्दिनी की सेवा कर रहा था। उसका सेवाकाल भी छोटा-सा था। मुनि हेमराजजी ने लम्बे समय तक स्वामीजी की सेवा की। सूर्योदय से सूर्यास्त तक और सूर्यास्त से पुन. सूर्योदय तक स्वामीजी के जीवन मे कब क्या घटा, इसके वे सबसे अधिक जागरूक साक्षी थे। किसी घटना का घटित होना बडी बात नहीं है। बडी बात है उसे पकडना और स्मृतियो मे सहेज कर रखना। मुनि हेमराजजी ने पूरी आधी सदी तक उन घटनाओ को याद रखा, उसी स्मृतिजल का संग्रहण है 'भिक्खु दृष्टान्त' आदि ऐतिहासिक सस्मरण ग्रन्थ।

जो व्यक्ति गुरु के अधिक निकट रहता है, उस पर अनुग्रह की वर्षा होती रहती है। अनुग्रह पाने का अधिकारी वही होता है, जो निग्रह को सहन करता है। मुनि हेमराजजी ने स्वामीजी का अनुग्रह और निग्रह दोनों ही प्राप्त किए। सामान्य व्यक्ति गुरु का अनुग्रह पाकर अहकारी हो जाता है तथा निग्रह की स्थिति उसे दीन-हीन बना देती है। मुनि हेमराजजी का व्यक्तित्व सतुलित था। उन्होने अनुग्रह और निग्रह दोनो को आत्मोदय का साधन माना। उन्होने स्वामीजी के साथ पहला चातुर्मास्य खैरवा मे, दूसरा पाली मे, तीसरा नाथद्वारा मे और चौथा पुर में किया। चार वर्षों की अवधि मे अनुग्रह-निग्रह की अनेक घटनाएं घटित हुई। यहा कुछ प्रसंगों का उल्लेख किया जा रहा है।

केवली सूत्र-व्यतिरिक्त होते हैं

मुनि हेमराजजी के व्यक्तित्व का एक घटक था—समर्पण। वे स्वामीजी के प्रति हार्दिक भाव से समर्पित थे। उनकी प्रत्येक इच्छा को अपनी इच्छा मानकर चलते थे। उनकी दृष्टि के

विपरीत काम हो जाने पर वे उद्विग्न हो जाते थे। निर्देश या आज्ञा की तो बात ही क्या, वे तो उनके इंगित-आकार की आराधना करते थे। इतने विनीत, समर्पित और जागरूक शिष्य के प्रति गुरु का वात्सल्य स्वाभाविक हो जाता है। स्वामीजी के मन मे मुनि हेमराजजी के प्रति विशेष कृपाभाव था। वे उन्हे हर क्षेत्र में प्रोत्साहित करते रहते।

स्वामीजी के शिष्यो मे एक थे—मुनि वेणीरामजी। वे बहुत बुद्धिमान थे। उनको शास्त्रीय ज्ञान की अच्छी धारणा थी। उनकी व्याख्यानशैली आकर्षक थी। मुनि हेमराजजी को दीक्षा की प्रेरणा देने मे उन्होने काफी श्रम किया था। एक दिन वे स्वामीजी के पास जाकर बोले—'हेमजी व्याख्यान अच्छा देते है। वे धाराप्रवाह बोलते है। पर व्याख्यान के पद्य पूरे याद नहीं रखते। कहीं पद्यों की विस्मृति होती है, तो वे नए पद्य जोडकर बोल देते है।'

मुनि वेणीरामजी का लक्ष्य था कि स्वामीजी प्रेरणा देगे तो हेमजी व्याख्यान पक्का याद कर लेगे। पर स्वामीजी का चितन इससे भिन्न था। उन्होंने कहा—'केवली सूत्रव्यतिरिक्त होते है। वे जो बोलते है, वही यथार्थ हो जाता है। हेम की बुद्धि इतनी तेज है कि वह आशुकविता कर लेता है। इसमे बुरा क्या है?' मुनि वेणीरामजी स्वामीजी की बात सुन मौन हो गए। स्वामीजी के विधायक दृष्टिकोण ने उनको अभिभूत कर दिया। मुनि हेमराजजी को इस प्रसग की जानकारी मिली। अपने प्रति स्वामीजी का वात्सल्य और उनकी गुणग्राही मनोवृत्ति ने उनको सजग कर दिया। उन्होने व्याख्यान के क्षेत्र मे अधिक पुरुषार्थ कर विशेष दक्षता प्राप्त कर ली।

दाल मिलाकर क्यों लाए ?

स्वामीजी का जीवन बहुआयामी था। आत्म-साधना उनके जीवन का सर्वोपरि आयाम था। इसके लिए वे ध्यान और स्वाध्याय पर बहुत बल देते थे। ध्यान के प्रयोग से साधक अपनी वृत्तियो पर पूर्ण रूप से नियत्रण कर सकता है, यह रहस्य उन्हे ज्ञात था। वे ध्यान का अभ्यास करते थे। उन्होने अपने पूर्व गुरु

आचार्य रघुनाथजी से कहा—'मै दो घडी तक श्वास का निरोध कर रह सकता हूं।' श्वास संयम की इतनी क्षमता दृढ संकल्प और गहरे अभ्यास के बिना नहीं आ सकती।

शास्त्रों का अनुशीलन स्वामीजी की जीवनचर्या का प्रमुख अंग था। शास्त्रीय ज्ञान को वे अपना मार्गदर्शक मानते थे। उनकी सैद्धान्तिक अवधारणाओ का आधार जिनवाणी थी।

एक ओर अध्यात्म साधना एव सृजन चेतना के अन्तर्मुखी क्षण, दूसरी ओर धर्मसंघ की छोटी-से-छोटी व्यवस्था के प्रति जागरूकता। संघ मे साधना करने वाले छोटे-बड़े सब साधुओ के कार्यों पर वे अपनी नजर रखते थे। किसी भी साधु के कार्य में थोडा-सा भी प्रमाद देखते तो वे उसे अनदेखा नहीं करते थे। सामने वाला व्यक्ति उनका कितना ही कृपापात्र क्यो न हो।' वे उसको कडी से कडी बात कह देते थे।

घटना वि सं १८५६ की है। उन दिनों स्वामीजी नाथद्वारा मे प्रवास कर रहे थे। वायु की बीमारी के कारण उनको तेरह महीनो तक नाथद्वारा मे रहना पडा। वहां मुनि हेमराजजी गोचरी गए। वे चने और मूंग की दाल एक पात्री मे मिलाकर ले आए। दो दालो को इकट्ठा देखकर स्वामीजी ने पूछा—'चने और मूंग की दाल मिलाई हुई थी या मिलाकर लाए हो?' मुनि हेमराजजी बोले—'स्वामीजी ! यह तो मैने ही मिला दी।'

स्वामीजी को मुनि हेमराजजी की यह प्रवृत्ति उचित नहीं लगी। उन्होने कहा—'बीमार साधु के लिए मूग की दाल का गवेषण करना तो कहीं रहा, सहज प्राप्त दाल को दूसरी दाल में क्यो मिलाया ? तुमने यह प्रमाद कैसे किया ?' मुनि हेमराजजी विनम्रता के साथ बोले—'मुझे ध्यान नहीं रहा। अनजान मे ये इकट्ठी हो गईं।'

भविष्य मे उस प्रकार का प्रमाद न हो, इस दृष्टि से स्वामीजी ने मुनि हेमराजजी को उपालभ दिया। मुनि हेमराजजी का मन इस घटना से खिन्न हो गया। वे उदास होकर लेट गए। स्वामीजी आहार करने बैठे। मुनि हेमराजजी वहा नहीं थे।

स्वामीजी महान मनोवैज्ञानिक थे। वे उनकी अनुपस्थिति का कारण समझ गए, फिर भी कुछ बोले नही। उन्होने पूरी सहजता के साथ आहार किया। आहार करने के बाद वे मुनि हेमराजजी के निकट जाकर वात्सल्य उडेलते हुए बोले—' हेम! क्या कर रहा है? मेरे अवगुण देख रहा है या अपनी आत्मा के?'

स्वामीजी के शब्द सुनते ही मुनि हेमराजजी उठे। स्वामीजी के चरणो मे प्रणत हो अत्यन्त विनम्रता के साथ उन्होने कहा—'महाराज! अवगुण तो अपनी आत्मा के ही देख रहा हू।' इस बार स्वामीजी ने उनको पुन प्रतिबोध देते हुए कहा—'ठीक है, आज के बाद सावधान रहना। उठो, जाओ और आहार करो।' मुनि हेमराजजी तत्काल उठे। स्वामीजी ने उन्हें आहार मडली के स्थान पर ले जाकर आहार करा दिया।

मैं नहीं बता सकता।

मुनि हेमराजजी के जीवन मे जितने रास्ते खुले, वे सब स्वामीजी की ओर जाते थे। उनकी जीवनपोथी का हर पृष्ठ, हर पेरा और हर पक्ति स्वामीजी के प्रति पूजीभूत सहज श्रद्धा की सुगन्ध से सुवासित थी। स्वामीजी की सन्निधि मे उन्हे अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति होती थी। श्रद्धा, भक्ति या समर्पण एकलव्य की तरह एकपक्षीय ही नहीं होता। मुनि हेमराजजी को अपनी आस्था और समर्पण का प्रतिदान प्राप्त हो रहा था। उनका अपना व्यक्तित्व और कर्तृत्व था ही, स्वामीजी ने उसे निखारने का पर्याप्त अवकाश दिया। गुरु-शिष्य का वह अद्भुत योग दोनो के लिए समाधिदायक रहा।

गुरु-शिष्य के बीच गहरे तादात्म्य के बावजूद गुरु गुरु ही थे। वे अपने और शिष्य के मध्य अपेक्षित दूरी रखते थे। प्रशासन या अनुशासन की दृष्टि से उनके पास जो गोपनीय रहस्य थे, वे उन्हे कभी प्रकट नहीं करते थे। मुनि हेमराजजी भी उन रहस्यो से निरपेक्ष रहते थे। उनके मन मे इस विषय की कोई जिज्ञासा या कुतूहल नहीं था। पर एक बार उनका मन थोडा-सा-चचल हो गया। यह बात रीया और पीपाड गांव के बीच

की है। वहां स्वामीजी को एक अन्य सम्प्रदाय का साधु मिला। वह उन्हें एकान्त स्थान मे ले गया। स्वामीजी ने उसके साथ कुछ समय बात की और वे लौट आए। मुनि हेमराजजी ने पूछा—'स्वामीनाथ! उस साधु ने आपसे क्या बातचीत की?' स्वामीजी बोले—'उसने अपने दोषो की आलोचना की थी।' मुनि हेमराजजी ने पुन पूछा—'उसने किन दोषों की आलोचना की?' स्वामीजी बोले—'हेम ! यह उसका व्यक्तिगत मामला था। मै इस सम्बन्ध मे तुम्हे कुछ भी नहीं बता सकता।'

मुनि हेमराजजी तत्काल सभल गए। उन्हे अपनी भूल का बोध हो गया। स्वामीजी द्वारा आलोचना करने की जानकारी पाने के बाद उनके मन मे ऐसी उत्सुकता क्यो जागी? इस बारे मे सोचते हुए वे स्वामीजी के चरणो मे प्रणत हो गए।

पंक्तियां टेढी-मेढी क्यों ?

मुनि हेमराजजी विशिष्ट प्रतिभा के धनी थे। उनका बुद्धि कौशल समय-समय पर सामने आता रहता था। वे अनेक कलाओं मे निष्णात थे। किन्तु लिपिकला मे उनका अभ्यास पुष्ट नहीं था। फिर भी वे प्रतिलिपि करते रहते थे। एक बार उन्होने लिखना शुरू किया। एक पन्ना पूरा होने के बाद वे उसे स्वामीजी को दिखाने आए। स्वामीजी को विश्वास था कि हेम अपनी लिपि सुधार सकता है। किन्तु इस दिशा मे गति करना इसका लक्ष्य नहीं है। वे उन्हे सत्य और शिव की साधना के साथ कला के क्षेत्र मे भी निष्णात देखना चाहते थे।

मुनि हेमराजजी द्वारा लिखित पन्ना हाथ मे लेकर स्वामीजी मुस्कराए। उनकी अर्थभरी मुसकान देखकर मुनि हेमराजजी कुछ सकपकाए। उन्होने निर्देश प्राप्त करने की दृष्टि से वन्दना की। स्वामीजी बोले—'किसान खेत में हल चलाता है। वह चाम (हल की रेखा) सीधी निकालता है। देखो, तुम्हारी पक्तिया कितनी टेढी-मेढी है? लिखने मे पक्तिया सीधी होनी चाहिए।' मुनि हेमराजजी ने स्वामीजी के कथन को विनम्रतापूर्वक स्वीकार किया। उसके बाद उन्होने अपनी लिपिकला मे अपेक्षित विकास कर

लिया। लिपिकला के विकास से भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात है स्वामीजी की प्रतिबोध देने की कला और मुनि हेमराजजी की विनम्रता।

गुरु-कृपा का फलित

स्वामीजी पादू में प्रवास कर रहे थे। मुनि हेमराजजी उनके साथ थे। एक भाई ने उनकी पछेवडी की ओर इगित करते हुए कहा—'हेमजी स्वामी की चादर प्रमाण से बडी लग रही है।' मुनि हेमराजजी अपनी ओर से कुछ स्पष्टीकरण देते, उससे पहले ही स्वामीजी ने उनको पछेवडी उतारने का निर्देश दिया। मुनि हेमराजजी ने पछेवडी उतारी। स्वामीजी ने उस भाई के सामने लम्बाई और चौडाई दोनो ओर से पछेवडी मापकर दिखा दी। वह प्रमाण से अधिक नहीं थी।

स्वामीजी ने उपालभ की भाषा मे उस भाई से कहा—'चार अगुल वस्त्र-खण्ड के लिए क्या हम अपना साधुपन खोएंगे? क्या तुम हमे इतने भोले समझते हो? तुम्हे साधुओ का इतना भी विश्वास नहीं है? यदि कोई साधु मार्ग मे सजीव पानी पी ले या कुछ कर ले तो तुम उसके पीछे कहा-कहा जाओगे?' स्वामीजी द्वारा किए गए पछेवडी के माप और उनके द्वारा दिए गए प्रतिबोध से उस भाई को अपनी भूल का भान हो गया। वह हाथ जोडकर बोला—'मुझे व्यर्थ का सन्देह हो गया। आप महान् है। मुझे क्षमा करे।'

इस घटना से स्पष्ट होता है कि मुनि हेमराजजी के प्रति स्वामीजी विशेष कृपालु थे। उन पर आने वाली छोटी-बडी किसी भी उलझन का समाधान स्वय दे देते थे। इससे दो बाते फलित होती है—शिष्य के प्रति गुरु का कृपाभाव और हर उलझन को उचित तरीके से समाहित करने वाले गुरु की सन्निधि का दुर्लभ योग।

धृति और चातुर्य का योग

जैनमुनि भिक्षाजीवी होते है। उनके लिए कहीं भोजन नहीं बनता। गृहस्थ अपने लिए भोजन बनाते है। मुनि उसी में से

थोडा-थोडा ग्रहण करते है। उनकी भिक्षावृत्ति को माधुकरी वृत्ति या गोचरी कहा जाता है। गोचरी के लिए ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं है कि साधु अमुक-अमुक घरो से ही भिक्षा ले। उन्हें जहा भी सहज निष्पन्न और मुनिचर्या के अनुरूप भोजन मिलता है, वे ले सकते है। इस विधि से प्राप्त की गई भिक्षा को सामुदानिक भिक्षा कहा जाता है।

वि सं १८५६ मे स्वामीजी नाथद्वारा मे प्रवास कर रहे थे। उनके विरोधी लोगो ने जनता में भ्रान्तिया फैला रखी थीं। इस कारण कुछ व्यक्ति उनके प्रति द्वेष की भावना रखते थे। द्वेष की आग को सिंचन न मिले, इस दृष्टि से स्वामीजी ने अपने शिष्यो को निर्देश दिया कि वे ऐसे व्यक्तियो से दूर रहने का लक्ष्य रखे। इस निर्देश के बाद वहां सामुदानिक गोचरी की व्यवस्था बदल दी गई। मुनि हेमराजजी की दीक्षा का वह तीसरा वर्ष था। उन्होने आगमों का अध्ययन कर भिक्षाविधि का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। उन्होने एक दिन स्वामीजी से पूछा—'हम श्रावको के घर गोचरी के लिए जाते है। अनुक्रम से सब घरो की गोचरी नही करते। इसका क्या कारण है?' स्वामीजी ने उत्तर दिया—'यहा लोगो मे द्वेष भावना अधिक है। इसलिए हम सामुदानिक गोचरी नहीं करते।' मुनि हेमराजजी ने सामुदानिक गोचरी करने की आज्ञा मांगी। स्वामीजी ने उनको आज्ञा दे दी।

मुनि हेमराजजी मोहनगढ मे गोचरी के लिए गए। वे क्रमश गोचरी करते-करते एक घर मे गए। उन्होने गृहस्वामिनी से आहार-पानी के लिए पूछा। वह बोली—'महाराज! रोटी बन चुकी है, पर वह नमक पर पडी है।' मुनि हेमराजजी दूसरी मजिल पर गोचरी गए। उस घर की बहिन अटसट बोली। मुनि हेमराजजी शान्त रहे। कुछ समय के बाद उस बहन ने रोटी दे दी। इस प्रकार वहा कुछ अधिक समय लग गया।

मुनि हेमराजजी ऊपर से नीचे आए तो प्रथम गृहस्वामिनी ने सोचा—ये ऊपर से भिक्षा लेकर आए है। अन्यथा इतना समय कैसे लगता? संभवत ये हमारे ही सम्प्रदाय के साधु है। उसने

मुनि हेमराजजी को रोककर भिक्षा लेने के लिए आग्रह किया। मुनि हेमराजजी उसकी रसोई के पास गए। बहन ने भिक्षा देने के लिए रोटी हाथ मे ली। उन्होने पूछा–'तुम कह रही थी कि रोटी नमक पर पडी है। नमक पर रखी हुई रोटी हम नही ले सकते।' गृहस्वामिनी बोली–'महाराज! मैने समझा कि आप तेरापथी साधु है। इसलिए यह बात कही थी।' मुनि हेमराजजी बोले–'बाई ! हम है तो तेरापथी साधु। तुम्हारी इच्छा हो तो दान देना।' गृहस्वामिनी दुविधा मे फस गई। आखिर उसने बडी मुश्किल से उन्हे भिक्षा दी।

वहा से भिक्षा प्राप्त कर मुनि हेमराजजी उससे आगे वाले घर मे गए। आहार-पानी के लिए उन्होने पूछताछ की। उस घर की बहन बोली–'मुझे तो तेरापथी को रोटी देने का त्याग है।' मुनि हेमराजजी ने कहा–'बाई! रोटी देने का त्याग है तो कोई बात नहीं। तुम हमे पानी का दान दे दो।' बहन से कोई उत्तर देते नहीं बना। उसने उठकर पानी का दान दे दिया। मुनि हेमराजजी गोचरी कर स्वामीजी के पास गए। उन्होने सारी घटनाएं स्वामीजी को सुनाई। स्वामीजी उनकी धृति और चातुर्य से बहुत प्रसन्न हुए।

बात-बात में बोध

मुनि हेमराजजी के व्यक्तित्व निर्माण का एक मात्र श्रेय स्वामीजी को है। उनका लक्ष्य था कि हेम हर विषय मे दक्षता प्राप्त करे। मुनि हेमराजजी की गति-प्रगति से स्वामीजी सतुष्ट थे। पर स्वामीजी उन्हे अपनी तरह प्रत्युपन्नमति बनाना चाहते थे। इसके लिए वे समय-समय पर प्रायोगिक रूप मे उन्हे बोध देते रहते थे।

एक बार गुमानजी के साधु पेमजी मुनि हेमराजजी से मिले। उन्होने कहा–'हमारे पास तीन तुम्बे अधिक थे, वे आज फोड डाले।' उनकी बात सुन मुनि हेमराजजी बोले–'अपने सम्प्रदाय से अलग होकर तुमने नया साधुपन स्वीकार किया। इस घटना

को तो बहुत दिन हो गए। तुम्बे अधिक थे तो इतने दिन अधिक क्यो रखे ?'

पेमजी को कल्पना नहीं थी कि उन्हे ऐसे प्रश्न का सामना करना पडेगा। मुनि हेमराजजी द्वारा कारण पूछे जाने पर उन्होने कहा—'हम शिथिल हो गए थे सो अब धीमे-धीमे मजबूत होगे।'

मुनि हेमराजजी अपने आवास-स्थल पर आए। स्वामीजी को वदना कर उन्होने कहा-'महाराज ! आज पेमजी ने कहा कि वे शिथिल हो गए सो अब धीमे धीमे मजबूत होगे।' उनकी बात सुन स्वामीजी बोले—'हेम! तुमने यो क्यो नही कहा-'किसी ने आजीवन शीलव्रत स्वीकार किया। छह महीनो बाद वह बोला—'एक स्त्री मैने आज छोडी है।' तब किसी ने पूछा—'तुम्हे शील स्वीकार किए तो बहुत महीने हो चुके है।' तब वह बोला—'शिथिल पडे थे, अब दृढ धीमे-धीमे होगे।'

इस प्रकार का कोई प्रसंग घटित हुआ या नही, पर पेमजी ने जिस सन्दर्भ मे अपनी स्थिति स्पष्ट की, उसमे उक्त उदाहरण की सगति पूरी तरह बैठ जाती है। नया साधुपन स्वीकार करने के बाद भी शिथिलता रहे तो फिर नए और पुराने मे अन्तर क्या रहा ? लोगों को यह दिखाना कि हमने नया साधुपन लिया है और प्रवृत्ति ज्यों की त्यों चलती रहे तो यह जनता के साथ और स्वय के साथ भी धोखा है।

मुनि हेमराजजी की स्मरण शक्ति बहुत तेज थी। उन्होने स्वामीजी से जब कभी साधारण या विशिष्ट कोई भी बात सुनी, उसे ज्यो का त्यों अपने स्मृति प्रकोष्ठो में सहेजकर रख लिया। इसी कारण वे लगभग पाच दशक तक इस प्रकार के सैकडो प्रसगो को याद रख सके। स्मरण शक्ति के अभाव मे सुबह की सुनी हुई बात सायंकाल तक विस्मृत हो जाती है। उनकी सूक्ष्म मेधा की पहचान करके ही स्वामीजी ने उनको ऐसे गुर दिए होंगे, जिनसे उनका व्यक्तित्व बहुआयामी बन गया।

स्वामीजी के अन्तिम दर्शन

मुनि हेमराजजी दीप्तिमान साधु थे। उनकी व्याख्यान की शैली आकर्षक थी। वे सगीत कला में निष्णात थे। उनका तत्त्वज्ञान गभीर था। वे लोगो को समझाने मे पूरा रस लेते थे। उन्हे किसी भी तात्त्विक बोल के बारे मे पूछा जाता तो वे उसका सटीक उत्तर देते थे। उन्हे अनेक थोकडे याद थे। वे तत्त्व चर्चा मे सफलता के गुर जानते थे। उनके साथ चर्चा मे परास्त लोग उनके प्रति क्रोध करते, किन्तु वे सर्वथा शान्त रहते थे। उनमे निहित सभावनाओ को देखकर स्वामीजी ने उनको अग्रगण्य बनाकर स्वतत्र विहार कराने का विचार किया। इस विचार की क्रियान्विति से पूर्व उनको एक चातुर्मास्य मे मुनि वेणीरामजी के साथ रखा। वह चातुर्मासिक प्रवास पुर मे हुआ था।

चार वर्ष तक गुरुकुलवास और एक वर्ष तक रत्नाधिक सन्तो के साथ बहिर्विहार मे सफल प्रवास करने के बाद स्वामीजी ने मुनि हेमराजजी को अग्रगण्य की वन्दना कराई। उनके साथ सर्व प्रथम दो साधु दिए गए—मुनि रामजी (२३) और मुनि जोगीदासजी (४५)। मुनि रामजी दीक्षा पर्याय मे उनसे बडे थे। अग्रगण्य के रूप मे मुनि हेमराजजी का प्रथम चातुर्मास्य सिरियारी हुआ।

चातुर्मास्य समाप्ति के बाद उन्होने स्वामीजी के दर्शन किए। अन्य स्थानो पर चातुर्मास्य करने वाले साधु भी आए। उस वर्ष स्वामीजी ने तेरापंथ धर्मसघ का मर्यादा-पत्र (विशेष सविधान) तैयार किया। स्वामीजी के हाथ का लिखा हुआ वह मर्यादा-पत्र ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। वह उनके युग का आखिरी मर्यादा-पत्र था। उसी को आधार बनाकर आचार्य जीतमलजी (जयाचार्य) ने मर्यादा-महोत्सव मनाने की परम्परा प्रारभ की। उस पत्र की एक-एक धारा मे स्वामीजी की विशिष्ट प्रतिभा, सूझबूझ और अनुभव-प्रवणता के प्रतिबिम्ब है। विधिशास्त्र का अध्ययन न करने पर भी जिस गहराई मे उतर कर उन्होने सविधान बनाया है, वह इतिहास का दुर्लभ दस्तावेज है। सैकडो वर्ष व्यतीत होने के बाद भी उसकी किसी धारा मे परिवर्तन या

सशोधन की अपेक्षा नहीं हुई। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि सत्य की खोज मे सलग्न उनकी चेतना सम्पूर्ण सत्य को पा सकी या नही, पर वह इतनी पारदर्शी बन चुकी थी कि थोडी-सी एकाग्रता होते ही वहा अभिलषित सत्य उभर कर प्रत्यक्ष हो जाता था। वि स १८५९ मे स्वामीजी द्वारा लिखित मर्यादा-पत्र पर उस समय के साधुओ के हस्ताक्षर है। उनमे मुनि हेमराजजी के हस्ताक्षर भी है। वह पत्र तेरापंथ धर्मसघ का छत्र है, सुरक्षाकवच है, आधार है और सब कुछ है।

स्वामीजी ने वह मर्यादा-पत्र कहा लिखा ? और उसमे साधुओ के हस्ताक्षर कहा कराए ? इस विषय मे इतिहास मौन है। सभावना की जा सकती है कि मारवाड के काठा क्षेत्र मे किसी गाव मे स्वामीजी ने उस इतिहास का सृजन किया था। क्योकि उसके बाद वि. स १८६० मे उनका चातुर्मास्य सिरियारी था। वह उनका अन्तिम चातुर्मास्य था। भाद्रपद शुक्ला त्रयोदशी के दिन सात प्रहर के सथारे मे स्वामीजी ने पार्थिव देह का त्याग कर दिया।

स्वामीजी के प्रति आस्था

भिक्खु चरित की रचना

गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी ने 'तेरापंथ-प्रबोध' की रचना की। उसमे भीखणजी का जीवन और दर्शन गुम्फित है। स्वामीजी के साथ निकटता से जुडे हुए व्यक्तित्वो का भी उल्लेख है। उनमे एक नाम मुनि हेमराजजी का है। स्वामीजी के साथ उनकी कितनी अभिन्नता थी, उसका माप 'तेरापथ-प्रबोध' की दो पक्तियो से किया जा सकता है–

सख्या घटी न सन्तां री, है हुयो हेम रो पगफेरो।
स्वामीजी स्यूं गूंथ्योडो, जीवनपोथी रो हर पेरो।।

जिनकी जीवनपोथी का प्रत्येक पैराग्राफ स्वामीजी से गुथा हुआ है, वे स्वामीजी के बारे मे क्या सोचते थे ? इस जिज्ञासा ने मुझे मुनि हेमराजजी द्वारा लिखित 'भिक्खु चरित' पढने के लिए प्रेरित किया। 'भिक्खु चरित' मुनिश्री की उसी वर्ष की रचना है, जिस वर्ष स्वामीजी ने स्वर्गारोहण किया। इस रचना के लिए उन्होने स्थान भी वही चुना, जहा स्वामीजी ने पार्थिव देह का त्याग किया था। वि. स १८६० मे मुनिश्री का चातुर्मास्य मारवाड के पीसागण गांव मे था। चातुर्मास्य की सम्पन्नता के बाद वे सिरियारी कब आए ? और कितने दिन रहे ? यह अन्वेषण का विषय है। पर इतना असंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि सिरियारी पहुचते ही वे उस पक्की हाट मे पधारे, जहां स्वामीजी का अनशन सम्पन्न हुआ था। उस स्थान मे बैठते ही वे स्वामीजी की स्मृतियो मे खो गए होगे। तादात्म्य के उन क्षणो मे उनकी लेखनी चली और उन्होने एक सक्षिप्त जीवनचरित्र लिख दिया। इसे भी एक सयोग ही मानना चाहिए कि उस जीवनचरित्र की १३ ढाले है। स्वामीजी के जीवन में १३ अंको का विशेष योग था। १३ को जन्म, १३ को स्वर्गवास, प्रारभ मे १३ साधु,

१३ श्रावक, मुनि हेमराजजी की दीक्षा के समय उनका सन्तो में १३ वां स्थान और मुनिश्री द्वारा रचित स्वामीजी के जीवन वृत्त की १३ ढाले।

अपरिमेय महिमा

मुनि हेमराजजी ने स्वामीजी की महिमा को मापने का प्रयास किया तो उन्हे महाकवि कालिदास की मानसिकता का स्मरण हो आया। सूर्यवश का वर्णन करने के लिए समुद्यत महाकवि ने अपने महाकाव्य 'रघुवंश' मे लिखा है--

मन्द: कवियश प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्।
प्राशुलभ्ये फले लोभादुद्‌बाहुरिव वामन·।।

मंदमति होने पर भी मै उसी कीर्ति की कामना करता हूं जिसे काव्य-निर्माण करने वाले बडे कवि पाते रहे है। किन्तु ऐसी कामना करके मै वैसे ही उपहास को प्राप्त होऊंगा, जैसे बौना व्यक्ति लोभवश ऊचे हाथ वाले मनुष्य के द्वारा प्राप्य फल के लिए हाथ ऊपर करता है।

मुनि हेमराजजी अपने सम्पूर्ण शब्द-कोश का उपयोग करने पर भी स्वामीजी के जीवन का शब्दचित्र बनाने मे सफल नहीं हुए। अपनी अक्षमता को स्वीकार करते हुए उन्होंने लिख दिया--

'जस मेहमा घणी जगत मे कही कठा लग जाय।
पिण थोडी-सी परगट करूं, साभलज्यो चित ल्याय।।'
भिक्खु-चरित ढा०१ दूहा९?

मुनिश्री के अनुसार स्वामीजी ज्ञान के महासमुद्र थे। उनके पास बुद्धि का अक्षय भण्डार था। जिनाज्ञा पर उनकी अटूट आस्था थी। वे अपनी विशिष्ट प्रतिभा से जिनवाणी के नए-नए रहस्यो का उद्‌घाटन करते थे। उसको आधार बनाकर उन्होंने अपनी औत्पत्ति की बुद्धि के द्वारा ३८ हजार पद्य-परिमाण ग्रन्थों की रचना की। आगमसम्मत तथ्य और यौक्तिक न्याय समझने मे उनके ग्रन्थ बहुत-बहुत उपयोगी है।

चक्रवर्ती की तरह

मुनिश्री ने स्वामीजी को चक्रवर्ती से उपमित करते हुए लिखा है-चक्रवर्ती सम्राट चक्ररत्न की उपलब्धि होने के बाद देश साधने के लिए जाते है। छह खण्ड मे उनकी आज्ञा अखण्ड रूप मे मान्य हो जाती है। इसी प्रकार केलवा की अन्धेरी ओरी में शुद्ध चरित्र रूपी रथ चक्र प्राप्तकर उन्होंने नई यात्रा शुरु की। उन्होने जिन-जिन प्रदेशो मे भ्रमण किया, वहां अर्हत्-आज्ञा की अवधारणा को स्पष्ट कर दिया। इस काम में वे अत्यधिक निपुण थे। उन्होने अपने विहार क्षेत्रो मे जिनवाणी का इतना प्रकाश फैलाया कि मिथ्यात्व का अन्धकार स्वय दूर हो गया। जैसे दर्पण मे व्यक्ति को अपना चेहरा साफ-साफ दिखाई देता है। वैसे ही स्वामीजी के तत्त्वनिरूपण से धर्म और अधर्म की सही पहचान हो गई।

विरल व्यक्तित्व

स्वामी भीखणजी ने धर्मक्रान्ति का शखनाद उस समय किया, जब सही धर्म की पहचान खो-सी गई थी। मुनि हेमराजजी ने उनके इस अवदान की तुलना भगवान ऋषभ के धर्मप्रवर्तन से की है। ऋषभ प्रथम तीर्थकर थे। भगवान महावीर का स्थान उस क्रम मे चौबीसवा था। उनकी परम्परा के सवाहक स्थानकवासी सम्प्रदाय मे स्वामीजी दीक्षित हुए। दीक्षित होकर उन्होने आगमो का तलस्पर्शी अध्ययन किया। उन्हे अनुभव हुआ कि इस समय महावीर-दर्शन की प्रस्तुति मूलस्पर्शी नहीं है। उन्होने महावीर-दर्शन की सुरक्षा का सकल्प किया। उस सकल्प की पूर्ति के लिए उन्होने सूर्य की तरह ज्ञान का उद्योत फैलाया। विरोधी लोगो ने सूरज पर धूल उछालने का प्रयास किया, पर उसका तेज उत्तरोत्तर निखरता गया। उनकी साधना और पुरुषार्थ की निष्पत्ति देख मुनिश्री ने लिखा—'इस दु षम आरे में स्वामीजी जैसे महापुरुष न हुए, न होगे और न वर्तमान मे है।'

स्वामीजी का आचार उज्ज्वल था। वे जिस श्रद्धा और आचार का निरूपण करते थे, उसे लक्ष्मणरेखा मानकर चलते थे।

आचारनिष्ठ व्यक्ति को किसी प्रकार का भय नहीं होता। सिंह के आसपास कितने ही सियार आकर खडे हो जाएं, वह निर्भय घूमता रहता है। इसी प्रकार स्वामीजी के चारो ओर विभिन्न सम्प्रदायो के गढ होने पर भी वे कभी विचलित नहीं हुए। क्योकि आचार के क्षेत्र मे उनका पराक्रम सिह जैसा था। धर्म के अभ्युदय से पाप भागता है, सूर्य के उदय से अन्धकार भागता है, वैसे ही स्वामीजी के प्रभाव से पाखण्ड के पाव उखड गए।

स्वामीजी सूर्य की तरह तेजस्वी थे तो चन्द्रमा की तरह शीतल थे। उनके दर्शन करने से असीम शान्ति का अनुभव होता था। कोई व्यक्ति क्रोध से सतप्त होकर आता, वह भी उनकी शान्त और सौम्य मुखाकृति को देखकर शान्त हो जाता था। शास्त्रो मे साधु के लिए एक विशेषण आता है क्षमाश्रमण। स्वामीजी सही अर्थ मे क्षमाश्रमण थे। वे कर्म रूप शत्रुओं से लोहा लेने के लिए क्षमा की तलवार रखते थे। उनकी महिमा मेरु जितनी उन्नत थी।

तीर्थकर होंगे

स्वामी भीखणजी तीर्थकर के प्रतिनिधि थे। तीर्थकरों की परम्परा के संवाहक प्रत्येक सक्षम आचार्य को उनका प्रतिनिधि माना जा सकता है। किन्तु मुनि हेमराजजी को ऐसा आभास हुआ कि स्वामीजी भविष्य मे तीर्थकर की पदवी प्राप्त करेंगे। इस आभास को उन्होंने इस भाषा मे अभिव्यक्ति दी है—

उपगार आछो कीयो, कुमी न राखी काय।
'सकै तो' जाणू सामजी, पदवी तीर्थकर पाय।।

(भिक्खु-चरित ढा ३ दूहा ४)

स्वामीजी का सान्निध्य उनके लिए सहज सुखद था। किन्तु उक्त आभास के बाद उन्हे जो प्रसन्नता हुई, वह अनिर्वचनीय थी।

आचार्य की आठ सम्पदाए होती है – आचार-सम्पदा, श्रुत-सम्पदा, शरीर-सम्पदा, वचन-सम्पदा, वाचना-सम्पदा,

मति-सम्पदा, प्रयोग-सम्पदा और सग्रह-सम्पदा। स्वामीजी इन आंठ सम्पदाओं से सम्पन्न थे। धर्म की धुरा के धारक थे। उन्होने साधु-साध्वियों को सीख देते हुए कहा साधु-साध्वियो! तुम अर्हत भगवान की आज्ञा मे रहना सीखो। इससे तुम्हारा मूल्य स्वयं बढ जाएगा।'

मुनि हेमराजजी स्वामीजी के अनन्य भक्त थे। उनकी भक्ति, उनका समर्पण और उनकी प्रमोद भावना देखकर लगता है कि उन्होने स्वामीजी के जीवन का बहुत गहराई से अध्ययन किया। उनका जीवन गुणो का अथाह सागर था। सागर का पार पाना मुश्किल होता है, वैसे ही उनके गुणो का पार पाना कठिन था। अपनी कठिनाई बताते हुए उन्होने कहा-

दयावत मुनि दीपता रे, गिरवा ज्ञान भंडार।
एक जीभ कहणी आवै नहीं रे, पूज-गुणां रो पार।।

(भिक्खु-चरित ढा ४/५)

स्वामीजी की परमार्थ चेतना और परार्थ चेतना जागृत थी। उनके पास काम करने की सुविधा तो थी ही नही, जीवन यापन की दृष्टि से भी अनेक कठिनाइयां थीं। जीवन की न्यूनतम अपेक्षाए-भोजन, वस्त्र और मकान उन्हे कभी तो मिले ही नही, कभी-कभी मिले हुए भी हाथ से निकल गए। फिर भी वे कभी घबराए नहीं। स्वीकृत मार्ग से पीछे नहीं हटे। जन-प्रतिबोध का काम करते रहे। मुनिश्री को उन्होने मनोवैज्ञानिक तरीके से सम्बोध दिया था। वे उस उपकार को कभी भूल ही नही पाए। गुरु के उपकार का स्मरण कर उन्होने लिखा-

मुनि मो सू उपगार कियो घणो, संजम दियो सुखदाय हो,
जो अनेक प्रकारे गुण अखूं, तो ही उरण नहीं थाय हो।
जनम-जनम री लाय सूं, आप काढ्यो देई नै साज हो,
बले मारग बतायो मोख रो, धिन-धिन भीखू रिषराज हो।।

(भिक्खु-चरित ढा १३/१६)

स्वामीजी ने मेरे पर सबसे बडा उपकार कर मुझे सयम-रत्न

प्रदान किया। उस उपकार से उऋण होने के लिए मैं उनके कितने ही गुण कहू तो भी ऋण से मुक्त नहीं हो पाऊगा। मै अनन्त जन्मो से जन्म-मृत्यु की आग से झुलस रहा था। स्वामीजी ने कृपा कर मेरा हाथ पकड मुझे बाहर निकाल दिया। यदि वे मुझे बाहर निकालकर ही छोड देते तो मै पुन कही भी भटक सकता था। किन्तु उन्होंने तो मुझे मोक्ष का राजपथ बता दिया।

मुनिश्री ने स्वामीजी का जीवनवृत्त लिखा, वह सरस है, रोचक है, प्रेरक है और तेरापथ के इतिहास की अमूल्य सम्पदा है। उसे लिखते समय मुनिश्री के सामने सभवत दो उद्देश्य थे–

- स्वामीजी के प्रति कृतज्ञता की अभिव्यक्ति।
- प्रमोद भावना के द्वारा कर्म निर्जरा।

'भिक्खु-चरित' के अन्तिम पद्य मे मुनिश्री ने अपने जन्म-जन्मान्तर मे स्वामीजी की शरण स्वीकार की है। उनकी भाषा इस प्रकार है–

ए गुण गाया भीखू तणा, कर्म काटण निरजरा करण हो।
हाथ जोडी ऋष हेमो कहै, भव-भव होजो भीखू रो मोने सरण हो।।

(भिक्खु चरित १३/२१)

भव-भव मे जिनके शरण मे रहने की आकाक्षा होती है वह व्यक्तित्व कितना महान् होता है, अनुमान किया जा सकता है। स्वामी भीखणजी एक ऐसे ही व्यक्तित्व का नाम है जो सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चारित्र के प्रतीक थे। जिन्होने मौत को स्वीकार कर शुद्ध मार्ग पर चलने के लिए चरण बढाए थे। जिनके सामने एक ही लक्ष्य था अर्हतो की आज्ञा के आलोक मे लोक जीवन को आलोकित कर देंना। जिन्होने जीवन भर जिनमत की अलख जगाई। उनका जीवन सबके लिए प्रेरणास्त्रोत है। मुनि हेमराजजी ने उस प्रेरणास्त्रोत के जीवन का आंखो देखा वृत्त लिखकर उसे जीवंत बना दिया।

कर्तृत्व की रेखाएं

शिक्षा की अवधारणा

मनुष्य चिन्तनशील प्राणी है। वह सोचता रहता है। प्रसिद्ध दार्शनिक देकार्त ने चिन्तन को अस्तित्व के साथ जोडते हुए कहा—'मै सोचता हू इसलिए मै हू।' आचार्य श्री महाप्रज्ञ की अवधारणा इससे भिन्न है। उन्होंने लिखा है—'मैं हू, मै विकसित मस्तिष्क वाला हूं, इसलिए मै सोचता हू।' सोचना चेतना की अभिव्यक्ति का एक माध्यम है, जो सोचता है वह कुछ करना भी चाहता है। क्रियान्विति मे ही चिन्तन की सार्थकता है। कर्मविहीन चितन ऊषर भूमि पर बरसे हुए पानी की तरह अर्थहीन हो जाता है। चिन्तन, संयोजन और क्रियान्वयन—यह त्रिपदी ही मनुष्य के कर्तृत्व को उजागर करती है, नई दिशा देती है और उसे समाजोन्मुखी बनाती है।

व्यक्तित्व के बीज हर व्यक्ति मे छिपे रहते है। उपयुक्त वातावरण मिलने पर वे अकुरित हो सकते है। समुचित पुरुषार्थ, प्रेरणा और प्रोत्साहन के अभाव मे वे जीवन की धरती मे दबे रहते है। उन बीजो को अकुरित, पल्लवित, पुष्पित और फलित करने का काम जितना आवश्यक है, उतना ही दुरूह है। मा अपनी संतान को जन्म देती है। उसके भौतिक शरीर के निर्माण और विकास पर उसका जितना ध्यान रहता है, अन्तरग व्यक्तित्व के प्रति उतनी जागरूकता नहीं रहती। पिता को इस विषय मे सोचने का अवकाश ही कम मिलता है। वह कभी कुछ सोचता भी है तो उसकी सोच पुत्र की जीविका तक सीमित रहती है।

बच्चा कुछ बडा होकर स्कूल की दहलीज पर पाव रखता है। माता-पिता के दायित्व का विभाजन हो जाता है। शिक्षा और चरित्र—दोनो क्षेत्रों के पथदर्शक शिक्षक बन जाते है। किन्तु इतने बडे दायित्व का ईमानदारी से वहन करनेवाले शिक्षक कहां मिलते हैं? प्राचीन समय मे शिक्षा पद्धति का स्वरूप कुछ दूसरा था।

बच्चे गुरुकुलो में रहते थे। गुरुजन उन्हे पढाते थे और जीवन के उतार चढ़ावो में संतुलित रहना सिखाते थे। वर्तमान शिक्षा पद्धति मे बौद्धिक विकास पर पर्याप्त ध्यान दिया जाता है, पर केवल बौद्धिक विकास से जुडी हुई शिक्षा अधूरेपन का प्रतीक है। विश्व के सभी चिंतनशील लोगो ने समग्र विकास के प्रति जागरूकता दिखाई है।

अमेरिका के राष्ट्रपति लिंकन ने अपने पुत्र के शिक्षक को एक पत्र लिखा। उसका एक अंश निम्न निर्दिष्ट है—'मेरे पुत्र को बौद्धिक विकास के साथ यह भी पढाना कि जीवन के उतारो-चढावों को कैसे झेला जा सकता है। कठिन परिस्थितियो का सामना कैसे किया जा सकता है और सबके साथ प्रेम से कैसे रहा जा सकता है।

सम्पूर्ण व्यक्तित्व की अवधारणा के चार घटक है। शारीरिक विकास बौद्धिक विकास, मानसिक विकास और भावनात्मक विकास। प्रथम तीन स्तरों पर विकास का ग्राफ कितना ही ऊंचा हो जाए, भावनात्मक विकास के बिना वह पूर्णता के बिन्दु तक नहीं पहुच सकता। राष्ट्रपति लिंकन का इंगित उसी ओर था, वह स्वीकारा जा सकता है।

हर व्यक्ति की जीवन-यात्रा मे उतार-चढाव आते रहते है। उतार पर हताशा और चढाव पर प्रसन्नता की स्थिति स्वाभाविक है। किन्तु यह सफलता की कुंजी नही है। जो व्यक्ति अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियो का सामना नहीं कर पाता, वह आगे नही बढ सकता।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह अकेला नहीं रहता। उसका जीवन समूह के साथ आगे बढता है। सामूहिक जीवन मे समरसता के लिए प्रेम, करुणा, सहिष्णुता, धृति, मृदुता, स्वावलम्बन, सहयोग की भावना आदि मूल्यों को आत्मसात करना आवश्यक है। इसके अभाव मे समूह के साथ सामजस्य स्थापित करने में कठिनाई रहती है। इस विषय मे शिक्षको और अभिभावको की जागरूकता भावीपीढी को व्यक्तित्व-निर्माण के लिए उपयुक्त वातावरण दे सकती है।

हेम-पोशाल

मुनि हेमराजजी चिन्तन के धनी थे। उनके चिन्तन मे, तत्त्वज्ञान के क्षेत्र में जितनी गतिशीलता थी, सघ-विकास की दृष्टि से भी उतनी ही जागरूकता थी। उनका अभिमत था कि सघ के विकास की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण इकाई है व्यक्ति। जब तक व्यक्ति का निर्माण या विकास नही होगा, सघीय विकास का धरातल ठोस नही हो सकता। स्वामी भीखणजी ने उनके निर्माण मे अपने समय और श्रम का नियोजन किया था। गृहस्थ जीवन से लेकर गुरुकुलवास के चार वर्षो मे उन्होने स्वामीजी से जितना कुछ पाया, वे उसका उपयोग करने के लिए सकल्पित थे। सबसे पहले उन्होने साधुओ के व्यक्तित्व-निर्माण पर ध्यान दिया।

मुनि हेमराजजी व्यक्ति-निर्माण अथवा व्यक्तित्व-निर्माण की कला मे दक्ष थे। व्यक्तित्व के निर्माण मे शिक्षा का पूरा हाथ रहता है। शिक्षा के क्षेत्र में मुनिश्री की सहज रुचि थी। किसी विद्यालय मे विधिवत् अध्ययन नही करने पर भी वे उस समय स्थापित शिक्षा के मानकों से अनजान नही थे। उनमे विद्या प्राप्त करने की जितनी तडप थी, विद्यादान की भी उतनी ही तत्परता थी। चार-पांच वर्षो तक जैनविद्या का गंभीर अध्ययन कर उन्होने अपनी पाठशाला प्रारंभ कर दी। 'हेम-पोशाल' नाम से प्रसिद्ध उस पाठशाला के विद्यार्थी उस युग के मेधावी साधु थे। उस समय सस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, अग्रेजी आदि भाषाएं शिक्षा का माध्यम नही थीं। जैन आगमो और जैन सिद्धान्तो का तलस्पर्शी अध्ययन ही विद्वत्ता की सबसे बडी कसौटी थी।

मुनि हेमराजजी के सहयोगी के रूप मे अनेक साधु उनके साथ रहे। उनमे से किसी भी साधु मे थोडी-सी अर्हता का आभास मिला, मुनिश्री उसे निखार देने मे सलग्न हो गए। उनकी पोशाल मे अध्ययन करने वाले साधु स्वय को सौभाग्यशाली मानते थे। वह पोशाल गुरुकुलवास और बहिर्विहार—दोनो स्थितियो मे चलती रहती थी। बहिर्विहार मे पढने वाले साधुओ की सख्या कम होती। गुरुकुलवास मे वह घटती-बढती रहती। उनके अध्यापन की शैली

अनूठी थी। गभीर सैद्धान्तिक विषयों को भी वे सरलता से बुद्धिगम्य करा देते थे। भगवान महावीर की शासनव्यवस्था मे सात पद है। सात पदो मे एक पद उपाध्याय का है। उपाध्याय का काम है--आगमो का अध्ययन और अध्यापन। स्वामी भीखणजी ने तेरापन्थ धर्मसंघ मे उन सात पदो को आचार्य पद मे समाहित कर दिया। यदि उपाध्याय पद की स्वतंत्र परम्परा होती तो मुनि हेमराजजी के नाम से वह पद गौरवान्वित होता। यह सभावना उनके अध्यापन-कौशल के आधार पर की जा सकती है।

संभावनाओं की खोज

मुनि हेमराजजी कुशल परीक्षक थे। सम्पर्क मे आने वाले व्यक्तियो मे छिपी संभावनाओ की पहचान करने मे वे दक्ष थे। जिस व्यक्ति मे जैसी क्षमता होती, वे उसे उसी दिशा मे आगे बढने के लिए प्रेरित करते थे। उनकी समयानुकूल प्रेरणा से बीसो व्यक्ति साधु बनने के लिए तैयार हुए। उनके सहयोगी साधुओ मे से छह साधुओ की अग्रगण्य पद पर नियुक्ति हुई। मुनि स्वरूपचदजी, मुनि भीमराजजी, मुनि जीतमलजी (जयाचार्य), मुनि कर्मचन्दजी, मुनि सतीदासजी और मुनि हरखचन्दजी--इन साधुओ के व्यक्तित्व-निर्माण मे मुनि हेमराजजी का कर्तृत्व ही सर्वाधिक मुखर रहा है।

मुनि स्वरूपचदजी और जीतमलजी को दीक्षा के कुछ समय बाद ही आचार्य श्री भारीमालजी ने मुनि हेमराजजी के सरक्षण मे भेज दिया। मुनि भीमराजजी को भी दीक्षा के बाद दूसरा चातुर्मास्य मुनिश्री के सान्निध्य मे करने का मौका मिला। तीनों मुनि प्रतिभा सम्पन्न, विनम्र और सेवाभावी थे। मुनिश्री ने उनके निर्माण पर विशेष ध्यान दिया। तीनो मुनियो के व्यक्तित्व मे उत्तरोत्तर निखार आता गया। उन सबको अग्रगण्य बनकर सघ की सेवा करने का अवसर मिला। मुनिश्री को इस बात का भी श्रेय दिया जा सकता है कि उन्होंने तेरापथ धर्मसंघ के भावी आचार्य के निर्माण मे पुरुषार्थ किया। मुनि जीत आगे जाकर तेरापंथ धर्मसंघ के चतुर्थ आचार्य बने। मुनिश्री उन्हे आचार्य रूप

में तो नहीं देख पाए, पर युवाचार्य के रूप मे अवश्य देख लिया। इससे उनको जिस सात्विक उल्लास का अनुभव हुआ, वह अनिर्वचनीय है। मुनि कर्मचन्दजी, मुनि सतीदासजी और मुनि हरखचन्दजी की दीक्षा मुनिश्री के हाथ से हुई। उन्होंने तीनो सन्तों को इस रूप मे तैयार कर दिया कि उन्होने यशस्वी अग्रगण्य के रूप में संघ की सेवा की। मुनि हरखचन्दजी की योग्यता उस समय अधिक उजागर हुई। जब जयाचार्य ने अपने उत्तराधिकारी के लिए संभावित नामों मे एक नाम उनका जोडा। कोई साधु या श्रावक जयाचार्य से पूछते कि वे युवाचार्य किसे बनाएगे? इस प्रश्न के उत्तर में जयाचार्य कहते—

छोग हरख मघराव।
तीना मे स्यूं एक ने, पद देवण रा भाव।।

विद्यागुरु के प्रति कृतज्ञता

बालक सभावनाओ का पुज होता है। उसे उपयुक्त वातावरण, उचित देखभाल और सम्यक् प्रशिक्षण प्राप्त हो तो उसमे छिपी सभावनाए उजागर हो सकती है। बालक मुनि जीतमलजी की आकृति उसमे निहित विशिष्ट व्यक्तित्व की सूचना दे रही थी। आचार्य भारीमालजी को उसका आभास हो चुका था। उन्होने योग्य प्रशिक्षक मुनि हेमराजजी का चयन किया। मुनि जीतमलजी को उन्हे सौप दिया। साधना, शिक्षा, व्यवहार-कुशलता आदि समग्र विषयो के प्रशिक्षण का दायित्व मुनिश्री पर आ गया। उन्होने गुरु के आदेश को प्रसन्नता से शिरोधार्य किया।

मुनि जीत दीक्षा से पहले ही मुनिश्री के सम्पर्क मे आ चुके थे। उनकी प्रतिभा का परिचय मुनिश्री को मिल चुका था। दीक्षा के बाद साथ रहने का अवसर मिलने से मुनिश्री ने उनको गहराई से परखा। उनके मन मे मुनिश्री के प्रति श्रद्धा, विनय और समर्पण के भाव बहुत प्रगाढ थे। मुनिश्री विशेष कार्य के लिए बाहर जाते, उनके सहयोगी सन्तो को इस बात की सूचना दी जाती। सूचना मिलते ही मुनि जीत काम छोडकर खडे हो जाते। कई बार वे लेखन-कार्य मे व्यस्त होते थे। लिखने मे

कोई अक्षर अधूरा रह जाता या मात्रा देनी होती, उसे भी वे बीच मे ही छोड देते। समर्पण के अभाव में इतना विनम्र भाव कहा से आता? मुनि जीत मे अद्भुत ग्रहणशीलता थी। वे स्थितप्रज्ञ और पुरुषार्थी थे। मुनिश्री उनकी विशेषताओ से प्रभावित हुए। उन्हे ऐसा अनुभव हुआ कि तेरापथ का भविष्य उ:.के हाथों मे पल रहा है। इसलिए वे अन्य कार्यो को गौण कर मुनि जीत के निर्माण मे सलग्न हो गए। लगातार बारह वर्षों तक उन्हें विद्यादान देकर मुनिश्री स्वय को पूर्णकाम समझने लगे। मुनि जीत ने भी मुनिश्री को अपने विद्यागुरु के रूप मे मान्य किया। उन्होने अपने अनेक ग्रन्थो में मुनिश्री के इस उपकार का उल्लेख किया है। विद्यागुरु के उपकार-भार से उऋण होने के लिए उन्होने उनका पूरा जीवन-वृत्त लिख दिया। हेमनवरसो' नामक व्याख्यान मे जिस मुक्त भाव से मुनिश्री के व्यक्तित्व का चित्रण किया गया है, अद्भुत है। अपने विद्यागुरु की स्तुति मे उन्होने लिखा है-

'मुनि हेमराजजी मेरे अतिशय उपकारी रहे है। उन्होने मेरे निर्माण मे जो श्रम किया, उसे मै अभिव्यक्ति देने मे असमर्थ हूं। वे मेरे मन-प्राणो मे समाए रहे। उनके गुणो की स्मृति दिन-रात मुझे आल्हादित करती रहती है। स्वप्न मे भी उनकी सौम्य मुद्रा देखकर में आनन्दित हो जाता हूं। उनके स्मरण से मुझे जो उल्लास होता है, वह अनिर्वचनीय है। उन्होने मुझे कहा से कहां तक पहुंचा दिया। मै तो एक साधारण बून्द जैसा था। मुनिश्री ने ज्ञान दान देकर मुझे समुद्र जितना विशाल बना दिया। मै उनके गुणो को कभी विस्मृत नहीं कर पाता। दिन हो या रात, मै उनके ध्यान मे लीन रहता हूं। वे सच्चे पारस थे। अपने निकट रहने वाले को वे पारस बना देते थे। उनकी अनुपस्थिति मुझे कितनी अखरती है, इस बात को ज्ञानी पुरुष ही समझ सकते है।' उक्त भावना को जयाचार्य ने हेमनवरसो मे इस प्रकार अकित की है-

* हू तो बिन्दु समान थो, तुम कियो सिन्धु समान।
तुम गुण कबहू न बीसरू, निशदिन धरूं तुझ ध्यान।।

साचो पारस थे सही, कर दे आप सरीस।
विरह तुम्हारो दोहिलो, जाण रह्या जगदीश।।
(ढाल ८/३१, ३२)

मुनि जीत ने 'झीणी चरचा' नामक एक तात्त्विक ग्रन्थ की रचना की। उनका यह अभिमत था कि उनके पास जो तत्त्वज्ञान है, वह उनके विद्यागुरु मुनि हेमराजजी का अवदान है। इस मतव्य को प्रकट करते हुए उन्होंने लिखा है–

ज्ञान-सिन्धु अति है अथग, चरचा विविध सुछाण।
मुज विद्या-गुर हेम ऋष, कहू तास सिर आण।।
(झीणी चरचा ढा १ दो ७)

विद्यागुरु के नाम पत्र

वि स १८६९ से १८८१ तक बारह वर्षो तक मुनि हेमराजजी की पोशाल मे शिक्षा पाकर मुनि जीत ने अनेक विषयों मे दक्षता प्राप्त कर ली। उनकी योग्यता का अकन कर आचार्यश्री भारीमालजी ने पोष शुक्ला तृतीया के दिन उन्हें अग्रगण्य बना दिया। वे एक प्रभावशाली अग्रगण्य साधु थे। स्वतंत्र विहार करने के बाद भी वे बार-बार मुनिश्री के दर्शन कर उनके सान्निध्य मे कुछ समय बिताते। कभी-कभी तो बहुत लम्बा चक्कर लेकर भी वे मुनिश्री के दर्शन करते। इससे उनको बहुत आत्मतोष ि नता था। मुनिश्री के प्रति उनके मन मे कितनी ऊची भावना थी, वह उन्हे लिखे गए एक पत्र से जानी जा सकती है। उस विस्तृत पत्र का कुछ अश निम्नलिखित है–

'स्वामीजी श्री श्री श्री श्री १००८ श्री श्री हेमराजजी स्वामी, महाउत्तमपुरुष, बडा उपगारी, गणसिणगारी, क्षमाधारी, जगहितकारी, बालब्रह्मचारी, मुनि-आधारी, जन-वच्छलकारी, हेमहजारी सूं ऋष जीता री वदना, नमस्कार पंचांग नमावी नै बारंबार मालम हुवै। आप बडा वैरागी, सौभागी, छती ऋद्धि ना त्यागी हो। घणां जीवा नै द्वीपा नीं पर-सरणागत सुखकारी आधारभूत हो। आपरा वचनामृत अत्यन्त महावल्लभ याद आयांई हर्ष पामे तो सुण्यां रो काई कहणो-----

मुनि जीत जैसे प्रबुद्ध सन्तो के मन मे जिनके प्रति इतने उदात्त भाव हो, वे निश्चित रूप से असाधारण व्यक्तित्व के धनी थे। उपरोक्त पत्र के छोटे-से अंश को पढने से ज्ञात होता है कि संघ के साधु-साध्वियो की आचार्य के प्रति जितनी आस्था और समर्पण होता है, उससे भी अधिक प्रगाढ आस्था मुनि जीत के मन मे मुनि हेमराजजी के प्रति थी।

अद्भुत तादात्म्य

मुनि हेमराजजी और मुनि जीतमलजी के बीच गुरु-शिष्य का सम्बन्ध था। पर इस सम्बन्ध मे अनुशासन और भय का नहीं, आत्मीयता का भाव प्रबल था। आत्मीय जनों के प्रति उपचार गौण हो जाता है और करणीय प्रमुख रहता है। मुनि जीत का पूरा निर्माण उनके विद्यागुरु मुनि हेमराजजी के द्वारा हुआ था। फिर भी उनका बुद्धिकौशल इतना प्रखर था कि वे समय-समय पर मुनिश्री को परामर्श देने की अर्हता रखते थे।

वि स १८८४ की घटना है। उन दिनो आचार्यश्री रायचन्दजी का प्रवास पुर (मेवाड) मे था। मुनि हेमराजजी भी वही थे। मुनिश्री दीक्षापर्याय मे आचार्यश्री से बडे थे। प्रतिक्रमण के समय सब साधु आचार्यश्री से आलोयणा लेते थे। मुनि श्री आलोयणा अपने आप स्वीकार कर लेते। यह उनका अहं नहीं था। उस समय तक इस विषय मे कोई नीति निर्धारित नही थी। आचार्यश्री का चिन्तन था कि बडे साधु आचार्य के पास आलोयणा न ले, यह पद्धति भविष्य में कठिनाई पैदा कर सकती है। इसलिए दीक्षापर्याय मे बडे और छोटे सब साधुओ को आचार्य के पास आलोयणा लेना चाहिए।

आचार्यश्री मुनि हेमराजजी को आलोयणा के लिए निर्देश दे सकते थे। किन्तु उन्होने मुनि जीत के माध्यम से यह काम कराना ठीक समझा। उन्होने एक दिन कहा—'जीतमल! हेमराजजी स्वामी यहा 'आलोयणा' करने न आए, तब तक तुझे चारो आहार का त्याग है।'

छोटी-सी बात के लिए इतना कठोर निर्देश! वह भी मुनि हेमराजजी के सन्दर्भ में। जीत मुनि सोच सकते थे कि 'आलोयणा' के लिए मुनिश्री को बुलाना है। वे आए या न आएं, उनकी मर्जी की बात है। वे नहीं आएगे तो मेरे अनशन हो जाएगा। किन्तु उनके मन मे ऐसा विकल्प ही नही उठा। वे जानते थे कि मुनिश्री उनके किसी भी निवेदन को टाल नही पाएगे। सभवत आचार्यश्री को भी यह रहस्य ज्ञात था। इसलिए उन्होने इतना कडा निर्देश दिया और मुनि जीत ने उसे सहजता से स्वीकार किया। वे मुनि हेमराजजी के पास जाकर बोले—'मुनिश्री आप आचार्यश्री के पास 'आलोयणा' नही लेते, इससे व्यवहार मे अच्छा नही लगता। आपको 'आलोयणा' आचार्यश्री के पास करनी चाहिए।' मुनि हेमराजजी ने मुनि जीत की बात स्वीकार करते हुए कहा—'तुम कहते हो तो वहा कर लूगा।' इतना कहकर वे तत्काल उठे और आचार्यश्री के निकट जाकर बोले—'ब्रह्मचारीजी! 'आलोयणा' क्या धारे।' उस दिन के बाद यह नीति बन गई कि छोटे-बडे सब साधु 'आलोयणा' आचार्य के पास ही ले। प्रस्तुत प्रसग मुनि हेमराजजी और मुनि जीत के तादात्म्य भाव का प्रतीक है।

वि स १८७६ के शेषकाल मे आचार्यश्री भारीमालजी 'केलवा' मे प्रवास कर रहे थे। मुनि हेमराजजी ने वहा उनके दर्शन किए। लम्बे विहार के कारण वे कुछ क्लान्त हो गए थे। उन्होने आचार्यश्री से निवेदन किया—'आज तो थक गया।' आचार्यश्री ने कहा—'इतने क्यो चले? बीच मे जेतपुर क्यो नहीं ठहर गए?' मुनिश्री बोले—'जीतमल का मन नहीं था, इसलिए नहीं ठहरे।' इस पर आचार्यश्री ने कहा—'वह कौन आचार्य हो गया, जो उसकी बात माननी पडी। उसे कह देते कि तेरी बात मानने का भाव नहीं है।' आचार्यश्री ने यह बात विनोद मे कही होगी। इससे इतना तो प्रमाणित होता है कि मुनि जीत के प्रति उनके मन मे कितनी आत्मीयता और वत्सलता के भाव थे।

साथ रहने की इच्छा

मुनि जीत अध्ययनकाल मे अपने विद्यागुरु के विनीत शिष्य बनकर रहे। अग्रगण्य होने के बाद भी उनकी विनम्रता और भक्ति मे तनिक भी अन्तर नही आया। यह एक स्वाभाविक स्थिति है। उल्लेखनीय बात यह है कि युवाचार्य बनने के बाद भी जीत मुनि ने अपने विद्यागुरु को उसी भूमिका पर रखा। प्राय प्रत्येक चातुर्मास्य की सम्पन्नता के बाद मुनिश्री के दर्शन करने की भावना प्रमाणित करती है कि वे मुनिश्री के सामने स्वयं को एक विद्यार्थी साधु ही समझते थे। वि सं १९०३ मे उन्होने चातुर्मास्य भी मुनिश्री के साथ नाथद्वारा मे किया। वह चातुर्मास्य सघ के इतिहास की सुरक्षा के लिए वरदान बन गया।

उस चातुर्मास्य की सबसे बडी उपलब्धि है—'भिक्खु दृष्टान्त'। युवाचार्यश्री ने मुनिश्री से भिक्षु-युग के विशेष प्रसग सुनने की इच्छा प्रकट की। मुनिश्री उन प्रसगो को पश्चिम रात्रि मे याद करते और दिन मे लिखवाते। मुनिश्री की स्मरणशक्ति और युवाचार्य जीत की दूरदर्शितापूर्ण सूझबूझ से स्वामीजी के जीवन की दुर्लभ घटनाए सुरक्षित रह गई। उस समय यह प्रयास नहीं होता तो 'भिक्खु दृष्टान्त' जैसी मूल्यवान धरोहर का लोप हो जाता।

वि स १९०३ का चातुर्मास्य मुनिश्री हेमराजजी के साथ करने पर भी युवाचार्य जीत को तृप्ति नही मिली। वे अपने विद्यागुरु से और कुछ पाना चाहते थे। अथवा उनके जीवन के आखिरी समय मे उनके साथ रहना चाहते थे। इस दृष्टि से उन्होने मुनिश्री से कहा—'वि स १९०४ का चातुर्मास्य हम सिरियारी मे साथ-साथ करे।' मुनिश्री भी इस बात से अत्यधिक उल्लसित हुए। किन्तु चातुर्मास्य से पहले ही वि स १९०४ जेठ शुक्ला द्वितीया को सिरियारी मे मुनिश्री का स्वर्गवास हो गया। सयोग से युवाचार्य जीत चार दिन पहले ही उनके पास पहुच गए। उन्होने उनकी पूरी सेवा की और अन्तिम अनशन कराकर कृतार्थता का अनुभव किया।

हेमराजजी से बोलने का त्याग

मुनि स्वरूपचंदजी ने मुनि हेमराजजी के साथ छह चातुर्मास्य किए। दीक्षा स्वीकार करने के बाद प्रारभ से ही उनके सान्निध्य मे रहने से मुनिश्री ने उनके अध्ययन और विकास पर पर्याप्त ध्यान दिया। उन्होंने मुनिश्री से जैन-विद्या के सूक्ष्म रहस्यो का ज्ञान किया, चर्चा मे विशेष अर्हता प्राप्त की, व्याख्यान की कला सीखी और व्यवहारकौशल भी प्राप्त किया। वैसे उनको दो वर्षो तक आचार्यश्री भारीमालजी के सान्निध्य मे रहने का अवसर भी मिल चुका था। आचार्यश्री उनकी क्षमता से परिचित थे। वि स १८७८ मे मुनि हेमराजजी ने आचार्यश्री के दर्शन किए। उस वर्ष आचार्यश्री ने मुनि स्वरूपचंदजी को अग्रगण्य रूप मे स्वतत्र विहार करने का निर्देश दिया। मुनि स्वरूपचदजी ने निवेदन किया कि उन्हे मुनिश्री की सेवा मे रहने का अवसर देने की कृपा करे। आचार्यश्री ने उनको अनेक बार समझाया। फिर भी उनकी मुनिश्री से अलग रहने की मानसिकता नहीं बनी। वे बार-बार आग्रहपूर्ण निवेदन करते रहे।

आचार्य को उपायज्ञ माना गया है। वे उपाय को जानते है और उसको काम मे भी लेते हैं। इससे छोटी-बडी हर समस्या समाहित हो जाती है। स्वामी भीखणजी उपायज्ञ थे। उन्होने समय-समय पर अनेक उपाय काम में लिए। इस कारण ही वे विषम परिस्थितियो मे भी तेरापंथ को व्यवस्थित रूप दे सके, साधुओ को अनुशासन मे रख सके और श्रावक समाज को संगठित बना सके। आचार्यश्री भारीमालजी उनके अनन्य साथी थे। उनके साथ रहते-रहते वे उनके अनुभवों से लाभान्वित होते रहे। आचार्य पद का दायित्व सभालने के बाद उन्होने भी कुछ नए उपाय काम मे लेकर अपना मार्ग प्रशस्त किया।

संघविस्तार या लोकोपकार की दृष्टि से आचार्यश्री मुनि स्वरूपचदजी और मुनि हेमराजजी से भिन्न-भिन्न क्षेत्रो मे काम कराना चाहते थे। इस विषय में मुनि हेमराजजी मौन थे। मुनि स्वरूपचंदजी आचार्यश्री द्वारा अग्रगण्य बनाने के बाद भी मुनिश्री

को छोडकर जाने के लिए तैयार नहीं हुए। उस प्रसग मे आचार्यश्री ने एक मनोवैज्ञानिक उपाय काम मे लिया। उन्होने कहा–'स्वरूप! जब तक तू अग्रगण्य होना स्वीकार न करेगा तब तक तुम्हे हेमराजजी से बोलने का त्याग है। इसी आशय का त्याग उन्होने मुनिश्री को करा दिया। मुनि स्वरूपचदजी दुविधा की स्थिति मे आ गए।

मुनि जीतमलजी को इस घटना की जानकारी मिली। उन्होने अपने अग्रज मुनि स्वरूपचन्दजी को समझाते हुए कहा–'आचार्यश्री की मर्जी न हो तो मुनिश्री के साथ रहने का आग्रह नही करना चाहिए।' यह बात एक बार मे उनके गले नही उतरी। मुनि जीतमलजी ने उनको पुन समझाया तो उन्होने गुरु-आज्ञा शिरोधार्य की। आचार्यश्री का प्रयोग सफल हो गया। उन्होने दोनो को आपस मे बातचीत करने की आज्ञा प्रदान कर दी। इस घटना से तीन बाते फलित होती है–

१ मुनि स्वरूपचन्दजी की पद और प्रतिष्ठा से निरपेक्षता।
२ मुनि हेमराजजी के प्रति उनका समर्पण और उनकी सेवा करने का मनोभाव।
३ आचार्यश्री द्वारा अनुशासन का मनोवैज्ञानिक प्रयोग।

किसनगढ का चातुर्मास्य

वह युग तेरापंथ के प्रखर विरोध का युग था। स्वामी भीखणजी की धर्मक्रान्ति का सर्वाधिक विरोध जैन सम्प्रदायों के साधुओ और उनके अनुयायियो ने किया। वि सं १८६९ के चातुर्मास्य से पहले आचार्यश्री भारीमालजी किसनगढ पधारे। मुनि हेमराजजी भी उनके साथ थे। वहां कुछ जैन साधुओ ने उनको चर्चा का आह्वान किया। आचार्यश्री ने सहज भाव से उस आह्वान को स्वीकार कर लिया। चर्चा शुरु हुई। चर्चा मे अपना पक्ष कमजोर होता देखकर विरोधी पक्ष ने होहल्ला मचवा दिया। चर्चा की बात समाप्त हो गई। आचार्यश्री वहां से विहार कर जयपुर पहुच गए।

मुनि हेमराजजी को उस वर्ष चातुर्मास्य के लिए माधोपुर जाना था। उन्होने विहार किया। लगभग पैसठ किलोमीटर तक वे चले। आगे बनास नदी थी। वर्षा के कारण बनास नदी मे पानी आ गया। माधोपुर का मार्ग अवरुद्ध हो गया। मुनिश्री लौटकर किसनगढ आ गए। वहा मुनिश्री एक दुकान मे ठहरे। विरोधी पक्ष ने दुकान के मालिक को भ्रान्त किया। दुकान खाली करवा ली गई। मुनिश्री ने एक दूसरी दुकान की खोज की। उसके पास सचित्त मिट्टी डलवा दी गई। मुनिश्री को वह दुकान भी छोडनी पडी। तीसरी बार वे उम्मेदमलजी सरावगी को समझाकर उनकी दुकान मे ठहर गए। विरोधी पक्ष ने उस स्थान को छुडाने का भी प्रयत्न किया। किन्तु उसे सफलता नहीं मिली। असफलता मे सतुलन नही रहने पर धमकी दी गई। मुनिश्री शान्त रहे। विरोधी पक्ष ने यहा तक कह दिया—'तुम तेरापथी साधु बडे धूर्त हो। हमारे चर्चावादी और पण्डित साधु यहा थे, तब तो तुम यहा से विहार कर चले गए। जब हमारे उन साधुओ का विहार हो गया, तब तुम लौट आए। अब चातुर्मास्य प्रारभ होने से पहले-पहले तुम यहा से नही गए, तो तुम्हारे वस्त्र-पात्र बाजार मे ठोकरे खाते नजर आएगे।' मुनिश्री घबराए नहीं। उन्होने किसी बात का कोई प्रतिवाद भी नहीं किया।

. चातुर्मास्य प्रारंभ हुआ। विरोध की चिनगारी सुलग रही थी। उसे द्वेष की हवा मिली। उसने आग का रूप ले लिया। स्थानीय लोगो मे भय और तनाव का वातावरण बढा। ऐसी स्थिति मे मुनिश्री का व्याख्यान सुनने, उनसे बातचीत करने आदि का प्रसग ही उपस्थित नहीं हुआ। विरोधी पक्ष अपना काम करता रहा। मुनिश्री शान्त भाव और तटस्थ दृष्टि से देखते रहे। उस समय वे कुछ भी कहते तो विरोध की ज्वाला और अधिक प्रज्वलित हो जाती। किन्तु 'अतृणे पतितो वहि स्वयमेवोपशाम्यति'—अग्नि को ईन्धन न मिलने पर वह स्वयं शान्त हो जाती है। इसी प्रकार मुनिश्री की शान्ति ने एकपक्षीय विरोध की आग को ठण्डा कर दिया।

तनाव का वातावरण बदला। लोगो का भय कम हुआ। धीरे-धीरे उनकी आवाजाही बढी। कुछ व्यक्ति व्याख्यान सुनने लगे। उन्हे मुनिश्री की प्रवचन-शैली बहुत रुचिकर लगी। उनके मुंह से व्याख्यान की प्रशसा सुनकर श्रोताओं की सख्या बढी। मुनिश्री अवसर देखकर धार्मिक चर्चा करने लगे। उनसे त्याग, वैराग्य और तत्त्व की बात सुन लोग प्रभावित हुए। कुछ लोगो ने 'गुरु धारणा' की। फिर भी महापर्व पर्युषण मे सवत्सरी के दिन एक भी पौषध नहीं हुआ। मुनिश्री अपनी गति से काम करते रहे। लोगो की भ्रातियां दूर हुई। उन्हे स्वामीजी का तत्त्व-दर्शन समझने का मौका मिला। मुनिश्री के कर्तृत्व का प्रभाव हुआ। दीपावली के दिन वहा पांच पौषध हुए।

बनास नदी मे पानी का आना, माधोपुर का मार्ग बन्द होना, चातुर्मास्य के लिए मुनिश्री का किसनगढ लौटना, विरोधी वातावरण को शान्ति से सहना और पुरुषार्थ करते रहना—ये सब संयोग मिले। किसनगढ में स्वामीजी की श्रद्धा अकुरित हो गई। उस चातुर्मास्य में प्रतिबोध पाने वाले व्यक्तियो मे एक थे महेशदासजी। ये वही महेशदास जी थे, जो चातुर्मास्य से पहले आचार्यश्री भारीमालजी के प्रवास काल मे चर्चा के प्रसग मे 'होहल्ला' मचाने में अगुवा थे। यह उस समय की बात है, जब तेरापथ से उनका कोई संपर्क नहीं था। मुनिश्री के सम्पर्क से तत्त्व को समझने के बाद उन्होने अपनी पत्नी को भी स्वामीजी की श्रद्धा स्वीकार करने की प्रेरणा दी। इस प्रकार एक पूरा परिवार समझपूर्वक तेरापथी बना। इसमे मुनिश्री का कर्तृत्व बोल रहा है।

उदयपुर महाराणा पर प्रभाव

वि सं १८७५ मे आचार्यश्री भारीमालजी का उदयपुर मे प्रवास था। उस समय वहा महाराणा श्री भीमसिहजी राज्य कर रहे थे। विरोधी लोगों ने महाराणाजी को भ्रान्त कर लिया। उन्होने आचार्यश्री को उदयपुर छोडने का आदेश दे दिया। आचार्यश्री ने वहां से विहार कर दिया। विरोधी लोगो का षड्यत्र उन्हें मेवाड की सीमा से बाहर भेजने का था। इस विषय मे

महाराणा के चितन की जानकारी प्राप्त करते ही प्रच्छन्न तेरापंथी श्रावक केसरजी भडारी प्रकट हुए। उन्होने महाराणा को वस्तुस्थिति की जानकारी दी। महाराणा को अपनी भूल का भान हुआ। उस समय उन्होने अपने हाथ से पत्र लिखकर आचार्यश्री को पुन. उदयपुर पधारने की प्रार्थना की। समय की अनुकूलता न होने से वह प्रार्थना स्वीकृत नहीं हुई। चातुर्मास्य की सम्पन्नता के बाद महाराणा ने एक पत्र और लिखा। उस समय आचार्यश्री काकरोली मे प्रवास कर रहे थे। महाराणा का पत्र बहुत भावपूर्ण था। पर आचार्यश्री की वहा जाने की मानसिकता नहीं बनी। महाराणाजी की भावना पूरी करने के लिए आचार्यश्री ने मुनि हेमराजजी, मुनि रायंचदजी आदि १३ सन्तों को उदयपुर भेजा। सन्तो के आगमन की बात सुन महाराणा प्रसन्न हुए। मुनिश्री वहा एक महीन्े रहे। अनुश्रुति है कि महाराणा ने एक महीने मे ग्यारह बार मुनिश्री के दर्शन किए।

कर्तृव्य का विरोध

वि स १८७७ मे मुनि हेमराजजी का चातुर्मास्य उदयपुर मे था। मुनिश्री का प्रभाव वहा पहले से था। चातुर्मास्य मे अच्छा उपकार होने लगा। इससे विरोधी लोगों के मन मे द्वेष जागा। उन्होने उनके कार्य मे व्यवधान उपस्थित करने के लिए एक ब्राह्मण लडके को प्रलोभन दिया। वह लडका रात्रि में व्याख्यान के समय छिपकर कंकर फेकने लगा। यह बात महाराणा तक पहुच गई। उन्होंने अपने गुप्तचर नियुक्त किए। वह लडका पकडा गया। महाराणा ने उसे तोप के मुह चढा देने का आदेश दिया। इस आदेश से शहर मे तहलका मच गया। शहर के सभ्रान्त लोग चिंतित थे, पर महाराणा के पास पहुंचने की हिम्मत उनमे भी नहीं थी। क्योकि लडका स्पष्टत: अपराधी था। लडके की मा वृद्ध थी। उस पर वज्र टूटकर गिर पडा। उसने अपने बेटे को माफ करने की प्रार्थना की। द्वेषी लोगो ने भी दौडधूप की। किन्तु महाराणा अपने निर्णय पर अटल थे। उन्होने कहा–'सन्तो का अपराधी भगवान का अपराधी है। उसको यही

दण्ड मिलना चाहिए।'

विरोधी लोगो की तुच्छ हरकत, महाराणा का आदेश और शहर मे उत्पन्न भय एव तनाव की स्थिति के बारे मे मुनि हेमराजजी को जानकारी मिली। मुनिश्री ने मुनि रायचन्दजी को आवश्यक निर्देश दिए। उन्होने श्रावक केसरजी भंडारी से बात कर कहा—'हम साधुओ के निमित्त ऐसा काम नहीं होना चाहिए।' केसरजी महाराणा के पास पहुचकर बोले—'राणाजी! आपने उपद्रवकारी लडके के लिए जो आदेश दिया है, उससे साधु खुश नहीं है।' महाराणा ने इसका कारण पूछा तो वे बोले—'साधु कहते हैं कि उनके निमित्त से किसी की हत्या हो, यह उचित नहीं है।' यह बात सुन महाराणा ने कहा—'मेरी भावना भी ऐसा करने की नहीं है। पर भविष्य मे ऐसी स्थिति फिर पैदा न हो, इस दृष्टि से भय पैदा करने के लिए मैने आदेश दिया है।

उधर विरोधी लोग बार-बार चेष्टा कर रहे थे। महाराणा ने उनको बुलाकर कहा—'मै आज भी अपने निर्णय पर अटल हूं। किन्तु इससे वे सन्त खुश नहीं है। इस कारण मै इस लडके को मुक्त करता हू। भविष्य मे इस प्रकार की कोई हरकत किसी ने की तो एकलिगजी की आण लेकर कहता हू। 'माफ नही करूगा।' विरोधी लोग वैसे ही घबराए हुए थे। महाराणा की. चुनौती से वे सिहर उठे। उन्होने समझ लिया कि तेरापन्थ का विरोध उनके लिए बहुत महगा सिद्ध हो सकता है। मुनि हेमराजजी के कहने से ही महाराणा ने उस लडके की सजा माफ की, इस बात का भी उनके मन पर गहरा प्रभाव पडा।

तेरापन्थ धर्मसंघ के लिए वरदान

तेरापथ के आदिपुरुष स्वामी भीखणजी मनुष्य के परीक्षक थे। जौहरी रत्नो का परीक्षण करता है, वैसे ही स्वामीजी अपने सम्पर्क मे आने वाले लोगो का परीक्षण करते थे। मुनि हेमराजजी स्वामीजी के व्यक्तित्व से प्रभावित थे। स्वामीजी को भी उनके व्यक्तित्व मे सघ विकास के बीज दिखाई दिए। मुनि हेमराजजी स्वामीजी के अनन्य भक्त और अनन्य सहयोगी थे। धर्मक्रान्ति

के समय वे उनके साथ नहीं थे, पर उन्होने स्वामीजी के सिद्धान्तो को बहुत गहराई से समझा था। उनका श्रुतज्ञान इतना निर्मल था कि उन्होने उन सिद्धान्तो की व्याख्या करके सैकडो-हजारो लोगो को स्वामीजी के प्रति समर्पित कर दिया। तेरापन्थ धर्मसंघ को उनके अनेक अवदान है। कुछ महत्त्वपूर्ण अवदान निम्ननिर्दिष्ट है–

१ मुनिश्री हेमराजजी का 'पगफेरा' तेरापन्थ के लिए शुभ हुआ। उनकी दीक्षा के बाद धर्मसघ मे साधुओ की सख्या घटी नहीं, प्रत्युत बढती रही।

२ स्वामीजी के दोनो कधो पर बोझ रहता था। एक पर पुस्तके और दूसरे पर उपकरण। वि स १८३८ चैत्र शुक्ला पूर्णिमा को नाथद्वारा मे मुनि खेतसी की दीक्षा हुई। वे स्वामीजी के एक कधे का पुस्तको वाला वजन लेने लगे। वि स १८५३ मे मुनि हेमराजजी की दीक्षा हुई। उस समय स्वामीजी के एक कधे पर वजन था। मुनिश्री ने उसे अपने कधे पर थामकर स्वामीजी को पूर्णत हल्का कर दिया।

३ तेरापन्थ के इतिहास को सुरक्षित और व्यवस्थित रखने मे मुनि हेमराजजी का अपूर्व योगदान रहा।

४ जयाचार्य के व्यक्तित्व में निहित सभावनाओ को उजागर करने का श्रेय मुनि हेमराजजी को है।

५ तत्त्वचर्चा मे बडे-बडे दिग्गजो को हतप्रभ कर मुनि हेमराजजी ने तेरापन्थ के सिद्धान्तो के अकाट्य तर्कों के साथ प्रस्थापना की।

साहित्यिक अवदान

स्वामी भीखणजी का जीवन विलक्षण था। वे परम पुरुषार्थ के प्रतीक थे। उनकी ऊर्जा अनेक धाराओ मे प्रवहमान थी। वे सबसे पहले आत्मसाधक थे। साधना का सकल्प उनके रोम-रोम मे रमा हुआ था। आत्मसाधना के साथ उन्होने ज्ञानाराधना, धर्मचर्चा, जन-प्रतिबोध, साहित्यनिर्माण आदि अनेक क्षेत्रो मे अपने

श्रम का नियोजन किया। मुनि हेमराजजी को गृहस्थ जीवन से ही उनकी उपासना का अवसर मिलता रहा। वे कुशाग्र बुद्धि वाले सन्त थे। उनकी प्रतिभा अद्भुत थी। उनकी ग्रहणशीलता अनुपम थी। उनका तत्त्वज्ञान प्रखर था। उन्होने भी स्वामीजी की तरह साधना, तपस्या और व्यापक जनसम्पर्क के साथ साहित्य का सृजन किया। उनका साहित्य स्वामीजी की तुलना में बहुत कम है। फिर भी उन्होने जो कुछ लिखा है, वह उनकी साहित्यिक अभिरुचि, असाधारण प्रतिभा और विशिष्ट धारणाशक्ति को उजागर करने वाला है।

मुनि हेमराजजी की साहित्यिक कृतियों में जीवन चरित्र, स्तवन और गुणवर्णन की प्रमुखता है। उनकी रचनाओ का कालक्रम के अनुसार यहा उल्लेख किया जा रहा है—

१ भिक्खु-गुणसज्झाय स १८५६ नाथद्वारा
२ बीस विहरमाण की ढाल सं १८५९ पीसागण
३ भिक्खु-चरित्र स १८६० सिरियारी की पक्की हाट
४ आर्द्रकुमार रो बखाण स १८६० से १८६२ बलूंदा, जैतारण
५ वीर-चरित्र स १८६१ पाली
६ मगल स्वरूप ढालें सं १८६९ जयपुर
७ मुनि सामजी-रामजी को बखाण स १८७० इन्द्रगढ
८ वेणीरामजी रो चोढालियो स १८७४ गोगुन्दा
९ भारीमाल-चरित्र स १८७९ पीपाड
१० खेतसी-चरित्र (सतजुगी पचढालियो) स १८८१ जयपुर
११ बडी चौबीसी (चौबीस जिनस्तवन) स १८८५ पाली
१२ साध्वी कल्लूजी गुणवर्णन सं १८८७ के बाद
१३ नमोत्थुणं की जोड स १८९४ लाडनू
१४ मुनि हीरजी गुणवर्णन सं १८९४ लाडनू
१५ भिक्खु दृष्टान्त सं १९०३ नाथद्वारा
१६ अन्य दृष्टान्त सं १९०३, १९०४ नाथद्वारा, केलवा

हेम दृष्टात
श्रावक दृष्टान्त
दृष्टान्त

दीक्षा के तीन वर्ष बाद ही मुनि हेमराजजी की सृजनयात्रा प्रारभ हो गई। स्वामीजी के साथ उनका इतना तादात्म्य था कि उनकी लेखनी से प्रथम बार मे भिक्षु-गौरवगाथा ही लिखी गई। साहित्य सृजन का यह क्रम जीवन के अन्तिम वर्ष तक चलता रहा। उनके साहित्य का वर्गीकरण किया जाए तो मुख्य रूप मे तीन वर्ग बनते है-जीवनवृत्त, स्तुति या गुणवर्णन और दृष्टान्त। जीवनवृत्त और स्तुतिया उन्होने स्वय लिखी है। दृष्टान्त लिखाए है। लिखा गया या लिखाया गया यह साहित्य आकडो मे बहुत अधिक भले ही न हो, पर गुणवत्ता मे न्यून नहीं है। इसके आधार पर रचनाकार की सृजनशीलता, अनुभवप्रवणता, गुणग्राहकता और एकाग्रता का अकन किया जा सकता है। तीर्थकरो, आचार्यो और साधु-साध्वियों के प्रति मुनिश्री की अप्रतिम भक्ति तथा प्रमोद भावना का परिचय पाने के लिए उनके साहित्य का अनुशीलन आवश्यक है।

मुनि हेमराजजी द्वारा प्रदत्त दीक्षाएं

मुनि हेमराजजी गभीर तत्त्वज्ञानी और कुशल वक्ता थे। उनकी व्याख्यान-शैली प्रभावोत्पादक थी। उनसे प्रतिबोध पाकर सैकडो व्यक्तियो ने सम्यक्त्व दीक्षा स्वीकार की। उनके उपदेश से अनेक व्यक्ति बारहव्रती श्रावक बने। उनकी प्रेरणा से अनेक व्यक्ति ससार से विरक्त होकर दीक्षा लेने के लिए तैयार हो गए। उनके पास दीक्षित होने वाले साधु-साध्वियो के नामो की तालिका निम्ननिर्दिष्ट है-

	नाम	क्रम संख्या
१	मुनि जीवणजी	(५१)
२	" जैचन्दजी	(५५)
३	" पीथलजी	(५६)

४	मुनि सावलसिंहजी	(५७)
५	" रतनचंदजी	(७४)
६	" अमीचदजी	(७५)
७	साध्वी पेमांजी	(९१)
८	" नन्दूजी	(९२)
९	मुनि रतनचंदजी	(८१)
१०	" शिवजी	(८२)
११	" कर्मचन्दजी	(८३)
१२	" सतीदासजी	(८४)
१३	" उत्तमजी	(९०)
१४	" उदयचदजी	(९५)
१५	" मोतीजी	(९६)
१६	" उदयचंदजी	(१०६)
१७	" हजारीजी	(१०७)
१८	" हरखचदजी	(१४४) गृहस्थ वेश में

मुनि हेमराजजी के चातुर्मास्य

मुनि हेमराजजी ने वि. सं १८५३ माघ शुक्ला त्रयोदशी के दिन दीक्षा स्वीकार की। उनका मुनि-जीवन वि स १९०४ ज्येष्ठ शुक्ला २ तक चला। ५१ वर्षो से कुछ अधिक समय की अवधि मे उन्होने मेवाड, मारवाड, हाडोती और ढूढाड–इन चार संभागो मे विहार किया। उन्होने मारवाड में ३० चातुर्मास्य किए। मेवाड में १९ चातुर्मास्य किए। हाडोती और ढूढाड को एक एक चातुर्मास्य का मौका मिला। विहार-क्षेत्र अधिक विस्तृत न होने के कारण एक गांव मे कई चातुर्मास्य किए। विशेष उपकार की सभावना से उन्होने पाली मे ११ चातुर्मास्य किए। उनके ५१ चातुर्मास्यो का विवरण निम्नलिखित है–

प्रवास क्षेत्र	चातुर्मास्य संख्या	समय
१ आमेट (मेवाड)	३	स १८७८, ८३, १९०४
२ इन्द्रगढ (हाडोती)	१	स १८७०

३. उदयपुर (मेवाड) २ स १८७७, १९०२

४ किसनगढ (मारवाड) १ सं १८६९

५ कटालिया (मारवाड) २ स १८६३, ७२

६ खैरवा (मारवाड) २ स १८५४ (स्वामीजी के साथ) १८६७

७ गोगुन्दा (मेवाड) ४ स १८७४, ८२, ८८, ९९

८ जयपुर (ढूढाड) १ स १८८१

९ जैतारण (मारवाड) १ स १८६२

१० देवगढ (मेवाड) २ सं १८६४, ७६

११ पाली (मारवाड) ११ सं १८५५ (स्वामीजी के साथ) ६१, ६६, ७१, ७५, ८०, ८५, ८९, ९२, ९५, ९८

१२ पीपाड (मारवाड) ५ स १८७९, ८६, ९०, ९३, ९६

१३ पीसागण (मारवाड) १ सं १८६०

१४ पुर (मेवाड) ४ सं १८५७ (स्वामीजी के साथ) १८५८ (विणीरामजी के साथ) १८८४, १९०१

१५ बालोतरा (मारवाड) २ स १८६८, ९१

१६ लाडनू (मारवाड) १ स १८९४

१७ नाथद्वारा (मेवाड) ४ स. १८५६ (स्वामीजी के साथ) ८७, १९००, १९०३

१८ सिरियारी (मारवाड) ४ सं १८५९, ६५, ७३, ९७

व्यक्तित्व के आयाम

आचार्यपद की अर्हता

तेरापथ मे नाभिकीय स्थान पर आचार्य रहते हैं। पूरा धर्मसंघ परिधि मे है। परिधि का अस्तित्व केन्द्र पर निर्भर है। परिधि की सम्पूर्ण गतिमत्ता केन्द्र के आधार पर होती है। संघ की नीतियो का निर्धारण और प्रवर्तन का कार्य आचार्य का है। स्वामी भीखणजी संघ के प्रथम आचार्य थे। उन्होने अपनी अनुभवप्रवण प्रतिभा और दूरदर्शी दृष्टि से संघ का सविधान बनाया। उस सविधान ने संघ को आचार्य-केन्द्रित बना दिया। उसके अनुसार वर्तमान का व्यवस्थासूत्र आचार्य के हाथो में आया ही, उनकी अगली पीढी के व्यवस्थापन का दायित्व भी उन्हीं पर रहा। स्वामीजी ने अपने उत्तराधिकारी के रूप में मुनि भारीमालजी की नियुक्ति की। अट्ठाइस (२८) वर्षों तक वे युवाचार्य के रूप मे स्वामीजी की सेवा मे रहे। स्वामीजी का स्वर्गवास होने के बाद उन्होंने १८ वर्षों तक शासन सूत्र संभाला।

जीवन के अन्तिम वर्ष मे वे भावी व्यवस्था की दृष्टि से कुछ सचिन्त हुए। उनकी चिन्ता यह नहीं थी कि उनके सामने कोई योग्य साधु नहीं था। उनकी चिन्ता का कारण था तीन साधुओ मे से एक का चयन। मुनि खेतसीजी अत्यधिक विनम्र और सेवाभावी थे। स्वामीजी ने 'सतजुगी' सम्बोधन देकर संघ मे उनको विशेष प्रतिष्ठा दी। मुनि हेमराजजी दुर्लभ विशेषताओ के धनी थे। उनकी विशिष्ट क्षमताएं देखकर कह दिया—'भारमल! तुम्हारे सामने अब तक मै था, अब यह हेम हो गया। तुम निश्चिंत हो।' मुनि रायचंदजी ने छोटी उम्र में दीक्षा स्वीकार की। उनकी दीक्षा के कुछ समय बाद ही स्वामीजी ने कहा—'इस साधु की बुद्धि विलक्षण है। इसमे गुणवत्ता भी है। इसकी पुण्यवत्ता देखते हुए लगता है कि यह आचार्य पद के योग्य है।'

आचार्यश्री भारीमालजी के सामने तीन विशिष्ट व्यक्तित्व थे। शारीरिक अस्वस्थता की स्थिति मे वे एक निर्णायक बिन्दु पर पंहुचना चाहते थे। तीनो मे से वे किसका मनोनयन करे? इस प्रश्न पर असमजस की सी स्थिति थी। मुनि हेमराजजी को इस बात का आभास हो गया। उन्होने आचार्यश्री से निवेदन किया—'रायचदजी बहुत गुणवान् है। आप निश्चिंत होकर उन्हे अपना उत्तराधिकारी बनाए। मेरी ओर से आप किसी प्रकार का सन्देह न रखे। दाई और बाई आख मे कोई अन्तर नहीं होता। उसी प्रकार आप मुझे और रायचन्दजी को समझे।

आचार्य पद के प्रति मुनि हेमराजजी की निस्पृहता देख आचार्य रायचन्दजी बहुत प्रसन्न हुए। पद-प्राप्ति की अर्हता होने पर भी उससे सर्वथा निर्लिप्त रहने की मानसिकता व्यक्तित्व का विशिष्ट गुण है। सामान्य व्यक्ति तो योग्यता न होने पर भी पद के लिए उम्मीदवार बन जाता है। किन्तु हर दृष्टि से योग्य होने पर भी मुनिश्री ने जिस निरपेक्षता का परिचय दिया, उससे उनका व्यक्तित्व और अधिक महिमामंडित हो गया।

मुनि खेतसीजी के मन में भी पद के प्रति आकर्षण नहीं था। उन्होने भी आचार्यश्री को निश्चिन्त होकर अपना कार्य करने का निवेदन किया। इस पर आचार्यश्री ने आचार्य-पद व्यवस्था के पत्र में मुनि खेतसी मुनि रायचन्द—ये दो नाम रखे। मुनि जीत का अनुरोध था कि एक साथ दो नाम रखने से भविष्य मे कठिनाई आ सकती है। इस बात पर भी उन्होने ध्यान दिया और मुनि रायचन्दजी का नाम पत्र मे रखा। इस प्रकरण में मुनि हेमराजजी की जो भूमिका रही, वह उल्लेखनीय है।

श्रावकों की प्रतिक्रिया

मुनि हेमराजजी के प्रति श्रावक-समाज मे बहुत श्रद्धा थी। कुछ लोगो ने यह धारणा बना ली कि आचार्य भारीमालजी के बाद मुनि खेतसीजी और हेमराजजी—दोनों में से एक को आचार्य पद मिलेगा। किन्तु मुनि रायचन्दजी के नाम की घोषणा हो गई।

तेरापथ की मर्यादा के अनुसार इस विषय मे श्रावको का कोई हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए था। पर सब व्यक्ति इतने गंभीर नही होते। कुछ लोग व्यक्तिश और सामूहिक रूप मे उस निर्णय की आलोचना करने लगे। आलोचना का कारण यह नहीं था कि घोषित नाम मे वैसी अर्हता नही है। वह मात्र भावना का आवेश था। भावावेश मे उन लोगो ने आचार्यश्री तक अपना उपालभ पहुचा दिया। कुछ लोगो ने मुनि खेतसीजी और मुनि हेमराजजी के मन की थाह पाने का प्रयास किया। दोनो ही मुनियो ने उनकी बातो मे कोई रस नहीं लिया।

आचार्य भारीमालजी मुनि खेतसीजी और मुनि हेमराजजी के प्रति पूर्ण रूप से विश्वस्त थे। वे जानते थे कि मुनि-युगल मे पद-निरपेक्षता अद्‌भुत है। इस विश्वास के आधार पर वे लोगो की आलोचना से विचलित नहीं हुए। एक दिन चित्तौड के श्रावक हसराजजी सचेती आए। उन्होने आचार्यश्री से निवेदन किया—'मुनि खेतसीजी और मुनि हेमराजजी को गौण कर आपने एक छोटे साधु को आचार्य बना दिया। हमारी दृष्टि से यह उचित नहीं हुआ।' यह बात सुन आचार्यश्री बोले—'तुम गृहस्थ लोगो को साधुओ की पचायती मे क्यो पडता है? हम अपनी नीति के अनुरूप कार्य करेगे। वे तो मुनि खेतसीजी और हेमराजजी थे, जो तुम्हारी बातो से प्रभावित नहीं होते। तुम तो सघ मे दरार डालने वाला काम कर रहे हो।' मुनिश्री के बारे में आचार्यश्री की उक्त धारणा उनके विशिष्ट व्यक्तित्व की सूचक है।

उधर गोगुन्दा के कुछ भाइयो ने एक परिपत्र लिखकर उस पर पचीस भाइयो के हस्ताक्षर कराए। उस परिपत्र मे युवाचार्य रायचन्दजी को उपालंभ देते हुए लिखा गया था—'मुनिश्री हेमराजजी की उपस्थिति मे आपको यह पद स्वीकार नहीं करना चाहिए था। आप हमारे क्षेत्र के है, इसलिए आपके प्रति हमारे मन में आत्मीयता के भाव हैं। इस आत्मीयता से प्रेरित होकर ही हमने आपसे यह अनुरोध किया है।' उन लोगो का यह अनुरोध उचित था या नहीं, अलग बात है। पर मुनि हेमराजजी के व्यक्तित्व

मे इतनी विलक्षणता थी कि चतुर्विध धर्मसंघ मे उनके प्रति अहोभाव थे।

आभामंडल का प्रभाव

तीर्थंकर अतिशयधारी होते है। उनके आभामंडल का प्रभाव भी विलक्षण होता है। उनके समवसरण मे देव, मनुष्य और पशु सभी आते है। वहां आने वाले आपसी वैर-भाव भूल जाते है। जन्मजात शत्रु भी मित्र बन जाते है। सिंह और बकरी एक साथ बैठते है। सर्प और नेवला एक साथ खेलते है। यह उनके अतिशय के कारण होता है।

मुनि हेमराजजी की साधना भी बहुत ऊंची थी। उसकी तुलना तीर्थंकरो के किसी भी अतिशय के साथ नहीं की जा सकती। फिर भी यह बात निर्विवाद है कि साधना की निर्मलता का प्रभाव होता है। मुनिश्री के साधना-बल से उनका आभामण्डल अत्यधिक उजला हो गया। उस आभामडल के प्रभाव मे आने वाले व्यक्तियों का मन भी अपने आप बदल जाता। उनके मन की कटुता धुल जाती। इस सन्दर्भ मे रायपुर (मेवाड) का एक प्रसग उल्लेखनीय है।

मुनि हेमराजजी मेवाड मे परिव्रजन कर रहे थे। गांवो-कस्बो में घूमते-घूमते उन्होंने रायपुर की ओर विहार किया। गाव के लोगो को उनके आगमन की सूचना नहीं थी। इसलिए कोई श्रावक उनकी अगवानी मे नहीं गया। मुनिश्री गांव के बाहर तक पहुंच गए। रायपुर का एक हरिजन भाई किसी कार्यवश उसी रास्ते से जा रहा था। वह तेरापंथ का अनुयायी था। धर्म के प्रति श्रद्धाशील था। अनायास ही मुनिश्री के दर्शन पाकर उसकी प्रसन्नता का पार नहीं रहा। वह उलटे पांव लौटकर मुनिश्री के आगमन की सूचना देने गाव मे आया।

रायपुर के प्रतिष्ठित सेठ श्रावक जोधोजी सिसोदिया के साथ उस हरिजन भाई का गहरा मनमुटाव चल रहा था। उनकी बोलचाल भी बहुत दिनो से बन्द थी। फिर भी वह सीधा सेठजी

के घर गया। उसने मुनिश्री के आगमन की सूचना दी। सेठजी निर्वाक् रह गए। उन्हे कल्पना ही नही थी कि वह भाई इस प्रकार उसके घर आकर कोई सूचना दे सकता है। उन्होने उसका उपकार माना। गांव के और लोगो को साथ ले वे मुनिश्री की अगवानी मे गए।

मुनिश्री गांव मे आ गए। व्याख्यान शुरु हुआ। सेठजी अग्रिम पक्ति मे बैठे थे। वह हरिजन भाई पीछे बैठा व्याख्यान सुन रहा था। सेठजी परिषद के बीच मे खडे होकर बोले—'मै जन्म से महाजन हू और वह भाई हरिजन है। पर वास्तव मे मै महाजन नहीं हूं, वह भाई महाजन है। इसने मुनिश्री के आगमन की सूचना देकर मेरी भावना बदल दी। यदि यह बात मुझे ज्ञात होती तो मै इसे कभी नही कहता। इसने साधर्मिक भाई का सम्बन्ध निभाकर बडी उदारता का परिचय दिया है। इसलिए आज मै मुनिश्री के सामने शुद्ध अन्त करण से बार-बार 'खमतखामणा' करता हू।'

इस घटना से मुनिश्री को प्रसन्नता हुई, जनता पर प्रभाव पडा और लम्बे समय से चला आ रहा वैमनस्य समाप्त हो गया। हरिजन भाई की भावना मे आए आकस्मिक बदलाव का श्रेय मुनिश्री हेमराजजी के आभामडल को दिया जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

आचार्यों के कृपापात्र

स्वामीजी का असाधारण कृपाभाव

मुनि हेमराजजी स्वामी भीखणजी के कृपापात्र साधु थे। शिष्य को गुरु की कृपा अकारण मिल सकती है। पर मुनिश्री ने अपनी योग्यता या क्षमता के आधार पर गुरु-कृपा प्राप्त की। उनकी दीक्षा के लिए स्वय स्वामीजी ने तीव्र प्रयास किया। गणितीय फार्मूले के द्वारा उन्हे समझाकर तत्काल दीक्षा के लिए तैयार कर लिया। दीक्षा से पहले ही उनको भावी आचार्य का सहयोगी घोषित कर स्वामीजी ने उनके प्रति अपना अगाध विश्वास प्रकट किया। दीक्षा के बाद स्वामीजी ने उनको आगम सीखाने शुरु किए। पर सघीय अपेक्षा समझकर उन्हे बीच मे ही व्याख्यान सीखने का निर्देश दे दिया। स्वामीजी ने मुनिश्री को चार वर्ष तक अपना निकट सान्निध्य देकर उनका सही ढग से निर्माण किया। एक वर्ष तक उनको मुनि वेणीरामजी के साथ रखा। गुरुकुलवास और बहिर्विहार दोनो स्थानो मे सफल होने के बाद स १८५८ मे स्वामीजी ने उनको अग्रगण्य बनाकर लोकोपकार और सघ-विस्तार के लिए स्वतत्र विहार करा दिया।

आचार्य भारीमालजी का वात्सल्य

आचार्य भारीमालजी के साथ स्वामीजी की अभिन्नता थी। उन्होने स्वामीजी के जीवन को बहुत निकटता से देखा था। स्वामीजी की दृष्टि में मुनि हेमराजजी का कितना ऊचा स्थान है, इस बात से वे परिचित थे। गुरु-दृष्टि की आराधना उनके जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य था। स्वामीजी के दिवगत होने पर उन्होने शासन का दायित्व सभाला। सघ के साधु-साध्वियो को वे पूरा वात्सल्य देते थे। मुनिश्री के प्रति उनके मन में वात्सल्य और बहुमान के भाव थे। वे स्वय उदयपुर नहीं जा सके तो उन्होने मुनिश्री को भेजा। उससे पहले वि स १८६६ मे मुनिश्री

ने पाली मे चातुर्मास्य किया। वहां वे अस्वस्थ हो गए। उनका विहार नहीं हो सका। आचार्यश्री ने उस समय मुनि भगजी और जवानजी को उनकी सेवा मे भेजा। बाद मे आचार्यश्री स्वयं खेतसी आदि साधुओ और साध्वी हीराजी आदि साध्वियो को साथ लेकर पाली गए। मुनिश्री स्वास्थ्य लाभ होने के बाद पाली से विहार कर 'हेमावास' पहुच गए, तब आचार्यश्री ने रोयट की ओर विहार किया ।

आचार्यश्री ऋषिरायजी का बहुमान

तृतीय आचार्य रायचंदजी (ऋषिराय) भी पूर्वाचार्यों की तरह मुनि हेमराजजी को बहुत मान देते थे। जब कभी वे विहार कर आते, आचार्यश्री साधुओ को साथ लेकर उनकी अगवानी मे सामने जाते थे। एक बार आचार्यश्री राजनगर मे प्रवास कर रहे थे। चातुर्मास्य के बाद काफी साधु-साध्वियां वहां आ चुकी थीं। मुनिश्री हेमराजजी राजनगर आने वाले थे। आस-पास के गांवों के श्रावको को मुनिश्री के आगमन की सूचना मिली। आचार्यश्री उनके सामने जाकर उन्हे वन्दना करेंगे–इस सभावना के आधार पर मिलन का दृश्य देखने के लिए काफी लोग राजनगर पहुंच गए।

मुनिश्री राजनगर आए। आचार्यश्री उस दिन सामने नहीं गए। मुनिश्री स्थान पर पहुच गए। आचार्यश्री पट्ट पर बैठे थे। उन्होने वहीं से बैठे-बैठे वन्दना कर ली। उस समय तक दीक्षापर्याय में बडे साधुओं द्वारा आचार्यो को विधिवत् वन्दना करने की विधि प्रचलित नहीं हुई थी। आचार्य अपने गुरुभाई साधुओ को वन्दना कैसे करे ? इस विषय मे भी कोई निश्चित परम्परा नहीं थी। इसलिए आचार्यश्री रायचन्दजी ने मुनि हेमराजजी को उसी स्थान से वन्दना कर ली। लोगो का उत्साह ठडा पड गया। वे किसी अवांछित कल्पना से सहम गए। जसराजजी मारू दाठीक श्रावक थे। उन्होने आचार्यश्री से निवेदन किया–'आपने यह क्या किया? आप सामने पधारते तो सब लोगो को कितनी खुशी होती और कितने कर्म कटते।'

इस घटना के समय मुनि जीतमलजी वहीं थे। उन्होने श्रावको के मन मे होने वाले ऊहापोह को समझकर कहा—'आचार्यश्री की इच्छा हो तो सामने जाए और इच्छा न हो तो सामने न भी जाए। इस विषय मे गृहस्थो को बीच में आने की क्या आवश्यकता है?' मुनि जीतमलजी की टिप्पणी ने वातावरण में आए उफान को शान्त कर दिया। उनकी बात सुन कुछ लोग आपस मे कहने लगे-'हमने तो सोचा था कि इनमे कोई मतभेद हो गया है, पर ये तो सब एक ही है।'

लोग चले गए। मुनि जीतमलजी आचार्यश्री के पास पहुचे। उन्होने निवेदन किया—'आपको पट्ट से नीचे उतरकर वन्दना कर लेनी चाहिए थी।' आचार्यश्री ने स्पष्टीकरण देते हुए कहा—'जीतमल! सामने जाने मे मुझे कोई कठिनाई नहीं है। मै बहुत बार सामने गया हूं और आगे भी जाता रहूगा। इस बार तो साध्वियो के कहने से नहीं गया। साध्वियो की इच्छा थी कि मै यहीं रहू तो उन्हे भी 'मिलाप' देखने का मौका मिल जाए।

सबसे अधिक अखरा

वि स १९०४ मे मुनि हेमराजजी आमेट चातुर्मास्य कर काकरोली आए। उस समय आचार्यश्री रायचन्दजी बहुत साधुओ के साथ उनकी अगवानी मे गए। आचार्यश्री ने विधिवत् हाथ जोडकर वन्दना की। वह दृश्य देख जनता हर्ष विभोर हो उठी।

मेवाड से विहार कर मुनि हेमराजजी मारवाड आ गए। जेठ का महीना था। उन दिनो वे सिरियारी मे थे। वहा उनके श्वास की तकलीफ हो गई। उस समय आचार्यश्री रायचदजी सिरियारी से १२ कि मी दूर चिरपटिया गाव मे प्रवास कर रहे थे। मुनिश्री की अस्वस्थता के सवाद सुनकर आचार्यश्री ने मुनि कपूरजी को जेठ शुक्ला एकम के दिन सिरियारी भेजा। मुनि कपूरजी ने सिरियारी पहुचकर मुनिश्री के स्वास्थ्य की सुखपृच्छा की और आचार्यश्री के सुखसवाद सुनाए। उससे मुनिश्री को बहुत प्रसन्नता हुई। उसी दिन तीसरे प्रहर मे मुनिश्री ने मुनि कपूरजी से

कहा—'तुम शीघ्रता से जाओ' और आचार्यश्री से निवेदन करो कि आज ही यहां पधार जाए। आज नहीं पधार सके तो निवेदन करना कि दर्शन करने हो तो कल प्रथम प्रहर मे जल्दी पहुंच जाए। कहीं ऐसा न हो कि वे देर कर दे और दर्शन की बात मन मे रह जाए।

मुनि कपूरजी सिरियारी से विहार कर चिरपटिया गए। उन्होने आचार्यश्री को सारी बात निवेदित कर दी। उस दिन समय कम रहा। इसलिए आचार्यश्री ने दूसरे दिन जल्दी ही वहा से विहार कर दिया। आचार्यश्री वहा पहुचे, उससे दो मुहूर्त्त पहले ही मुनिश्री ने पार्थिव देह का त्याग कर दिया था। समय पर न पहुच पाने के कारण उनका मन तो खिन्न हो ही गया। उससे भी अधिक खिन्नता इस बात की थी कि मुनिश्री हेमराजजी जैसे सुयोग्य सन्त का स्थान रिक्त हो गया।

स्वामी भीखणजी का स्वर्गवास हुआ, उस समय ऋषिराय बाल साधु थे। स्वर्गस्थ होने से पहले स्वामीजी ने उनसे कहा—'रायचन्द! तू मोह मत करना।' इस पर वे बोले—'गुरुदेव! आप अपना कल्याण कर रहे है। मै मोह क्यों करूंगा?' इस प्रसग से ऐसा लगता है कि उस समय ऋषिराय को स्वामीजी की अनुपस्थिति इतनी नही अखरी। आचार्य भारीमालजी दिवंगत हुए। उनके अभाव का उन्हे अनुभव हुआ। किन्तु मुनि खेतसी और मुनि हेमराजजी जैसे वरिष्ठ साधुओ के सहयोग से वह असह्य नहीं हुआ। मुनि खेतसीजी का स्वर्गवास हुआ, उस समय मुनि हेमराजजी उनके सामने थे। मुनि हेमराजजी का यो चले जाना ऋषिराय को बहुत अखरा। मुनिश्री स्वामीजी के युग का प्रतिनिधित्व करने वाली एक महत्त्वपूर्ण कडी थी। उसके टूट जाने पर ऋषिराय ने कहा—'स्वामी भीखणजी, आचार्य भारीमालजी और मुनि खेतसीजी दिवगत हो गए। उनका जाना मुझे जितना कष्टप्रद नहीं लगा उतना आज मुनि हेमराजजी का जाना लग रहा है।'

जयाचार्य (मुनि और युवाचार्य) का तादात्म्य

मुनि हेमराजजी के साथ मुनि जीतमलजी का गहरा तादात्म्य भाव था। चातुर्मास्य की सम्पन्नता के बाद साधु-साध्वियां आचार्य के दर्शन करने जाते हैं, उसी प्रकार मुनि जीतमलजी मुनिश्री के दर्शन करने जाते थे। उनके विहार की दिशा विपरीत होती तो वे चक्कर लेकर भी मुनिश्री के पास जाते थे।

वि स १८८९ मे मुनि जीतमलजी का चातुर्मास्य दिल्ली था। उन्होने गोगुन्दा (मेवाड) मे आचार्यश्री ऋषिराय के दर्शन किए। मुनिश्री उस समय सिरियारी मे प्रवास कर रहे थे। मुनि जीतमलजी उनके दर्शन करने सिरियारी गए। वहां दस दिन उनकी सेवा कर पुन गोगुन्दा होते हुए लम्बे विहार कर अहमदाबाद से कुछ आगे आचार्यश्री से मिले।

वि सं १८९० के शेषकाल मे मुनि जीतमलजी जोधपुर प्रवास कर रहे थे। उन दिनो मुनि हेमराजजी काणाणा मे थे। मुनि जीतमलजी की दर्शन करने की इच्छा हो गई। वे जोधपुर से चले। उनका सकल्प था कि अक्षय तृतीया तक मुनिश्री के दर्शन करने है। उस समय मुनि जीतमलजी के एकान्तर तपस्या चलती थी। एक दिन उपवास और एक दिन पारणा। फिर भी उन्होने दोनो दिन समान रूप से लम्बे विहार किए, तब समय पर काणाणा पहुच सके। जिस दिन उन्होंने मुनिश्री के दर्शन किए। उस दिन उनके उपवास था। उस दिन उन्होने लगभग २४ किलोमीटर का विहार किया था।

मुनि जीतमलजी तेरापंथ के युवाचार्य बन गए। फिर भी मुनि हेमराजजी के प्रति उनकी भक्ति में कोई अन्तर नहीं आया। उनके द्वारा प्रदत्त पत्र और समय-समय पर की गई सेवाओ से इस बात की संपुष्टि होती है। मुनिश्री के आंख की शल्यक्रिया के समय और जीवन के अन्तिम समय मे भी युवाचार्यश्री उनके पास थे।

मुनिश्री के दिवंगत होने पर अपनी मन स्थिति का चित्रण करते हुए यूवाचार्यश्री ने 'हेमनवरसो' मे लिखा–

* विरहो पड्यो स्वामी हेम रो, दोरी लागी अथाय।
कै मन जाणै मांहरो, कै जाणै जिनराय।।

* हेम जिसा मुझ किम मिलै, इण भव एहवा सन्त।
दिसावान गुण आगला, मोटा हेम महन्त।।

हेम नव ढा ९/११२,११३

साधना के प्रयोग

तपस्या

मुनि हेमराजजी का जीवन बहुआयामी था। साधना, शिक्षा, सेवा, सगीत, प्रवचन, तत्त्वचर्चा, जन-प्रतिबोध, संघ-विस्तार, साहित्य-सृजन आदि अनेक क्षेत्रो मे उनका वर्चस्व था। ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं था, जिसमे मुनिश्री का कर्तृत्व मुखर न हो। वे जागरूक साधक थे। उन्होने अपने जीवन में साधना के विविध प्रयोग किए। निर्जरा के बारह भेदो मे अनशन, ऊनोदरी, रस-परित्याग, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग के प्रयोग उन्होंने बार-बार किए। कुछ व्यक्ति ऐहिक आकांक्षा की पूर्ति के लिए तपस्या करते है। कुछ व्यक्ति पारलौकिक उपलब्धि के लिए तपस्या करते है। कुछ व्यक्ति नाम और प्रतिष्ठा प्राप्ति के लिए तपस्या करते है। कुछ व्यक्ति केवल कर्मनिर्जरा का लक्ष्य सामने रखकर तपस्या करते है। मुनिश्री की तपस्या के साथ कोई भौतिक आकाक्षा नहीं थी। वे अपनी आत्मा की उज्ज्वलता के लक्ष्य से प्रतिबद्ध थे। उन्होने बहुत लम्बी तपस्या भले ही नहीं की, पर प्रत्येक चातुर्मास्य मे कुछ तपस्याओ का निश्चित क्रम चलता था।

मुनिश्री की तपस्याओ मे उपवास से लेकर अठाई तप तक का उल्लेख मिलता है। यदा-कदा उपवास तो वे करते रहते थे। वि स १८५६ में मुनिश्री ने स्वामीजी के साथ नाथद्वारा मे चातुर्मास्य किया। उसमे उन्होने पूरे चातुर्मास मे एकान्तर उपवास किए। बेला, तेला, चोला, पचोला, छह और आठ की तपस्या का भी उल्लेख मिलता है। ये तपस्याए कितनी बार दोहराई गई? इस विषय मे व्यवस्थित आंकडे उपलब्ध नहीं हैं। फिर भी उनके अनासक्त जीवन को देखते हुए यह स्वीकार किया जा सकता है कि उन्होने बेले, तेले, चोले और पचोले की तपस्या अनेक बार की थी।

रसपरित्याग

निर्जरा के बारह भेदो में एक भेद है—रसपरित्याग। दूध, दही, घी आदि पदार्थ रस कहलाते है। रसयुक्त होने के कारण मिठाई की गणना भी सरस और गरिष्ठ पदार्थों मे होती है। इन सबके लिए एक शब्द का प्रयोग होता है-'विगय'। आहार-सयम का प्रयोग करने वाले साधक 'विगय' का परित्याग करते है। विगय-परिहार की बात साधना और स्वास्थ्य दोनो दृष्टियो से आवश्यक है।

साधना के क्षेत्र मे खाद्य-संयम को बहुत महत्त्व दिया गया है। इसके मुख्य चार प्रकार है—अनशन, ऊनोदरी, भिक्षाचरी और रसपरित्याग। उपवास, बेला, तेला आदि विविध तपस्याओ का समावेश अनशन मे होता है। ऊनोदरी का अर्थ है भूख से कम खाना, पेट को कुछ खाली रखना। अधिक खाने से आलस्य आता है, प्रमाद होता है और स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है। भिक्षाचरी का सम्बन्ध खान-पान सम्बन्धी विविध प्रतिज्ञाओ के साथ है। अनशन, ऊनोदरी और रसपरित्याग—तीनों का समावेश इसमे हो सकता है। रसपरित्याग का अर्थ है—दूध दही आदि 'विगय' का परिहार।

मुनि हेमराजजी ने अपने जीवन मे रसपरित्याग की सलक्ष्य साधना की। खाद्य-पदार्थों के प्रति उनके मन मे आसक्ति नहीं थी। खान-पान के सम्बन्ध मे वे वैरागी साधु कहलाते थे। वे महीनो तक अनेक विगय का त्याग कर देते थे। उनका यह साधना क्रम सदा प्रवर्धमान रहा।

रसपरित्याग के प्रयोग

मुनिश्री स्वयं तो विगय का परिहार करते ही थे। अपने सहयोगी साधुओ से भी यह साधना कराते थे। इसके लिए वे समय-समय पर कुछ प्रयोग करते रहते थे। उनके वे प्रयोग कभी वैराग्य बढाने की दृष्टि से होते और कभी प्रमाद का परिष्कार कराने के लिए। वि स १८७४ मे मुनिश्री का चातुर्मासिक प्रवास

गोगुन्दा था। वहा उनके साथ वाले कुछ साधुओ का स्वभाव उग्र था। उनकी आपस मे नोकझोक हो जाया करती थी। कभी-कभी गृहस्थो के सामने भी ऐसे प्रसंग बन जाते। मुनिश्री को यह प्रवृत्ति अच्छी नहीं लगी। उन्होने साधुओ से कहा—'कोई भी प्रसग हो, शान्ति से बात करनी चाहिए। बहुत तेज बोलना शिष्ट तरीका नहीं है। गृहस्थ सुने, इस रूप मे तेज बोलना तो व्यवहार-विरुद्ध भी है। तुम लोगो मे कोई भी तेजी से बोले, उसे सुनकर गृहस्थ शिकायत करे तो सम्बन्धित साधुओ को एक मास तक छहो विगय का त्याग करना होगा।'

एक बार की बात है। दो साधु आपस मे तेजी से बोले। मोतीजी नामक दीक्षार्थी श्रावक ने सुन लिया। उसने मुनि हेमराजजी के पास शिकायत की। मुनिश्री ने दोनो सतो को अपने पास बुलाया, उन्हे समझाया और एक मास तक छहो विगय का त्याग कराया।

मुनि जीत का रसपरित्याग

मुनि हेमराजजी की वैराग्य वृत्ति से प्रभावित होकर उनके साथ रहने वाले साधु भी लम्बे समय तक विगय का परिहार कर देते थे। वि स १८७५ मे मुनिश्री का चातुर्मास्य पाली था। उनके साथ मुनि जीतमलजी (जयाचार्य) थे। सकल्प किया—'जब तक आचार्यश्री भारीमालजी के दर्शन नहीं होगे, पाच विगय का त्याग है।'

पाली का चातुर्मास्य पूरा होने के बाद मुनि हेमराजजी ने वहा से विहार किया। वे देवगढ पहुचे। वहा पचमी समिति से लौटते समय एक गाय ने मुनिश्री को चोट लगा दी। उससे घुटने का गोला उतर गया। साधु कम्बल की झोली मे उठाकर उन्हे गाव मे लाए। एक वैद्य के निर्देशानुसार मुनि स्वरूपचन्दजी मुनिश्री का पैर सीधा कर गोला बैठाने लगे। इससे मुनिश्री को पीडा का अनुभव हुआ। पीडा देख उन्होने पैर को शिथिल कर दिया। घुटने का गोला ठीक हुआ, पर उसमे कुछ कसर रह गई। इस कारण मुनिश्री को नौ महीनो तक देवगढ मे रहना पडा।

विहार की स्थिति न होने से वह चातुर्मास्य भी देवगढ मे हुआ। जीत मुनि का विगय-त्याग वाला सकल्प तेरह महीनों बाद पूरा हुआ। उन्होने प्रसन्नता के साथ इतने समय तक पांच विगय का परिहार किया।

परीषहजयी

दशवैकालिक सूत्र मे मुनि की साधना का चित्र खींचते हुए कहा गया है–

> आयावयंति गिम्हेसु, हेमंतेसु अवाउडा।
> वासासु पडिसलीणा, संजया सुसमाहिया।।

गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी ने साधु-साध्वियों को प्रशिक्षण देने के लिए 'व्यवहार-बोध' की रचना की। उसमे उक्त सदर्भ का हिन्दी पद्यानुवाद इस प्रकार है–

> ग्रीष्म काल मे गर्मी, सर्दी,
> सहे शान्तमन ऋतु हेमन्त।
> प्रतिसलीन रहे वर्षा मे,
> है समाधिमय वे ही सत।।

गर्मी और सर्दी प्राकृतिक परिस्थितियां है। प्राचीन काल मे मनुष्य को भी पशु-पक्षियों की तरह इन परिस्थितियो को सहन करना पडता था। विज्ञान युग के आदमी ने गर्मी से बचने के लिए विद्युत्चालित पंखे, कूलर और एयरकंडीशन का आविष्कार किया। वातानुकूलित मकानो और वाहनों में रहकर उसने भयकर से भयंकर गर्मी पर विजय प्राप्त कर ली। सर्दी मे गद्दा, कम्बल, गिलाफ आदि शीतरक्षक वस्त्रों का उपयोग प्राचीन काल मे भी होता था। अब वह हीटर आदि के प्रयोग से कमरो को भी उष्मामय बना लेता है। तात्पर्य की भाषा मे यह माना जा सकता है कि एक साधनसम्पन्न मनुष्य के लिए गर्मी-सर्दी जनित कष्ट अब कष्ट नहीं रहे है।

जैन-शास्त्रों में २२ परीषहो मे उष्ण और शीत–ये दो परीषह है। जैन मुनि गर्मी से बचने के लिए मर्यादा के अनुसार

खुले मकान मे रह सकता है और सर्दी से बचने के लिए सीमित वस्त्र भी रख सकता है। फिर भी कुछ साधु-साध्विया साधना के विशेष प्रयोग करते है। वे गर्मी मे हवादार स्थान की खोज नहीं करते, समय-समय पर आतापना लेते हैं और सर्दी मे एक पछेवडी से अधिक नहीं ओढते।

मुनि हेमराजजी आत्मार्थी, पापभीरु और वैराग्यवृत्ति वाले साधु थे। उन्होने शीतकाल मे एक पछेवडी के अतिरिक्त सूती या ऊनी किसी भी प्रकार के वस्त्र का उपयोग न करने का मानसिक संकल्प किया। उन्होंने बहुत वर्षों तक शीत परीषह को सहन किया। जीवन के आखिरी वर्षो मे वृद्धावस्था में एक पछेवडी से अधिक वस्त्र का उपयोग किया।

कायोत्सर्ग के प्रयोग

मुनि हेमराजजी खडे-खडे कायोत्सर्ग करते थे। कायोत्सर्ग योग-साधना का प्रमुख अंग है। शास्त्रो मे मुनि के लिए एक विशेषण आता है—'अभिक्खणं काउस्सग्गकारी'। मुनि बार-बार कायोत्सर्ग करता है। प्रतिक्रमण मे दोनो समय कई बार कायोत्सर्ग का विधान है। गोचरी, विहार, पंचमी समिति आदि प्रवृत्तियों के बाद भी कायोत्सर्ग करने की विधि है। दु.स्वप्न आने पर भी कायोत्सर्ग किया जाता है। अधिक प्रवृत्ति के कारण शरीर क्लान्त हो जाए तो कायोत्सर्ग करने से शरीर में नई स्फूर्ति आ जाती है। हृदय-रोग, रक्तचाप आदि बीमारियो में कायोत्सर्ग का प्रयोग असदिग्ध रूप से लाभप्रद प्रमाणित हो रहा है। मुनिश्री कायोत्सर्ग को अपनी दैनिक चर्या का अग मानते थे। शीतकाल में वे पछेवडी उतार कर कायोत्सर्ग करते थे।

ध्यान के प्रयोग

कायोत्सर्ग का अर्थ है शरीर का शिथिलीकरण, स्थिरीकरण और जागरूकता। यह ध्यान का आदि और अन्तिम बिन्दु है। जब तक कायोत्सर्ग नहीं होता, ध्यान भी नहीं होता। मुनि हेमराजजी का कायोत्सर्ग सधा हुआ था। इसलिए उनके सहज रूप मे ध्यान

हो जाता। ध्यान की गहराई मे उतरना उनके लिए कठिन नहीं था। वे इस विषय मे निरन्तर पुरुषार्थ करते रहते थे।

धर्म्यध्यान से शुक्लध्यान मे जाना उन्हे अभीष्ट था। सब कर्मों से मुक्त होना उनका लक्ष्य था। लक्ष्य की दिशा मे गति करने के लिए वे कायोत्सर्ग मुद्रा मे ध्यान करते थे।

सतत स्वाध्यायी

स्वाध्याय मस्तिष्क के लिए खुराक है। इससे विचारो मे नया उन्मेष आता है, ज्ञानचेतना निर्मल होती है और एकाग्रता बढती है। मुनि हेमराजजी का स्वाध्याय के प्रति गहरा अनुराग था। दिन हो या रात वे स्वाध्याय करने के लिए तत्पर रहते थे। अपनी स्वाध्यायशीलता के कारण ही वे गभीर तत्त्वज्ञ बन सके। उन्हे स्वाध्याय मे अत्यधिक आनन्द की अनुभूति होती थी। उनकी स्वाध्याय मे विशेष रुचि देखकर मुनि जीतमलजी ने उनके लिए 'भगवती सूत्र' की प्रति लिखी। मुनि हेमराजजी को लक्ष्य करके लिखी जाने के कारण उस प्रति का नाम 'हेम भगवती' हो गया। हेम भगवती की वह प्रति आज भी तेरापथ के पुस्तक-भडार मे सुरक्षित है।

उपशान्त कषाय

मुनि हेमराजजी उपशम भाव के साधक थे। उनका कषाय शान्त रहता था। वे कभी कठोर वचन नही बोलते थे। किसी को शिक्षा देनी होती, कोई बात समझानी होती तो वे अत्यन्त मधुरता और कोमलता का प्रयोग करते थे। वे मधुरभाषी थे। कटु सत्य को भी वे मधुरता के साथ प्रस्तुत करते थे। कोई साधु या गृहस्थ उनके प्रति कठोर शब्दो का प्रयोग कर लेता तो भी मुनिश्री कभी क्रोधावेश मे नही आते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि अपने मन, वाणी और शरीर पर उनका पूरा नियत्रण था।

शास्त्रों मे धर्म के चार द्वार बताए गए है। उनमे पहले द्वार का नाम है– क्षान्ति। क्षमा की साधना एक बडा तप है। अर्हतों

के लिए एक विशेषण आता है-'क्षमाशूर'। मुनि हेमराजजी के लिए क्षमाशूर विशेषण सर्वथा उपयुक्त लगता है। पहले से चौथे अर (काल विभाग) तक क्षमाशील व्यक्तियों का होना बडी बात नहीं है। पांचवे अर, जिसे कलिकाल कहा जाता है, क्षमा की इतनी उत्कृष्ट साधना करने वाले विरल व्यक्ति होते है।

आचार-निष्ठा

साधु जीवन की सफलता का सर्वोपरि मानक है आचार-कुशलता। एक साधु तपस्या करता है पर स्वीकृत आचार के प्रति उपेक्षा करता है तो उसकी तपस्या का तेज मद हो जाता है। एक साधु बहुत बडा विद्वान् है, पर आचार-सम्पन्न नहीं है तो उसकी विद्वत्ता का मूल्य कम हो जाता है। एक साधु प्रखर वक्ता है, पर कथनी-करनी में समानता नहीं है तो उसका वक्तृत्व प्रभावी नहीं बन पाता। एक साधु अच्छा साहित्यकार है, पर उसके आचार पक्ष पर प्रश्नचिन्ह लगा हो तो वह समाज मे प्रतिष्ठित नहीं हो सकता। एक साधु सजग सेवाभावी है, पर आचार के क्षेत्र मे पग-पग पर प्रमाद करता है तो उसे महत्त्व प्राप्त नहीं हो सकता। एक साधु बहुत परिश्रमी है, पर आचार के क्षेत्र में आलसी है तो उसका परिश्रम राख मे होमे गए घी की तरह अर्थहीन हो जाता है।

स्वामी भीखणजी की धर्मक्रान्ति के दो आधार थे—वैचारिक विसंगतियां और आचार की शिथिलता। उन्होंने विचार की धरती पर यौक्तिक रेखाएं खींचकर अनेक मौलिक स्थापनाएं कीं। आचार की प्रतिबद्धता के कारण प्रारंभिक पाच वर्षों में वे जीवन-यापन की न्यूनतम सुविधाओ से वचित रहे। उन्होने अपने सहयात्रियो को इस दिशा मे बार-बार प्रेरित किया। सही दिशादर्शन उपलब्ध होने पर भी जिन साधु-साध्वियों ने जागरूकता का परिचय नहीं दिया, उनका संघ के साथ सम्बन्ध नहीं रखा।

मुनि हेमराजजी स्वामी भीखणजी के निकटवर्ती शिष्यों मे से एक थे। वे साधनाशील थे, विनम्र थे, प्रतिभासम्पन्न थे, चर्चा-निष्णात थे, व्याख्यानी थे, अच्छे गायक थे और प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी थे। इन सब गुणो को तुला के एक पल्ले मे और दूसरे पल्ले में उनकी आचार-निष्ठा को रखकर तोला जाए तो आचार-निष्ठा वाला पल्ला भारी मिलता है। वे पांच महाव्रत, पांच समिति और तीन गुप्ति के प्रति पूरे जागरूक थे।

गहरी छानबीन

एक दिन मुनिश्री गोचरी गए। वे एक घर में गोचरी कर रहे थे। उस समय दूसरे घर की बहिन ने रसोई का दरवाजा खोल दिया। मुनिश्री ने पूछताछ की। बहिन बोली—'रसोई का दरवाजा खुला पडा था।' मुनिश्री ने ध्यान से देखा। कपाट में लगी साकल हिल रही थी। कपाट पहले से खुला होता तो सांकल कैसे हिलती ? इस युक्ति के आधार पर वे बोले—'ऐसा लगता है कि तुमने कपाट अभी खोले है।' बहन ने यह बात सुनकर कहा—'मुनिश्री ! आप तो बहुत छानबीन करते है। दूसरे साधु तो ऐसा नही करते।' मुनिश्री बोले—'बाई ! हमे अकल्पनीय आहार-पानी लेने का त्याग है। इस कारण हम पूरी पूछताछ कर गोचरी करते है।'

दरवाजा क्यो खोला?

नियम छोटा हो या बडा, उसके प्रति होने वाली जागरूकता ही व्यक्तित्व के कद को ऊंचा उठाती है। मुनिश्री की जागरूकता उनकी चर्या के वातायन से कदम-कदम पर झाकती हुई प्रतीत होती है। मुनिश्री एक घर मे गोचरी के लिए गए। एक बहन ने घर का दरवाजा खोल दिया। मुनिश्री ने दरवाजा खोलने का कारण पूछा। बहन बोली—'महाराज ! मै सूत कात रही थी। मुझे पूनियो की जरूरत थी। इसलिए मैने दरवाजा खोला है।' मुनिश्री ने ध्यान दिया। वहा काफी पूनिया रखी हुई थीं। उन्होने कहा—'बहन! तुम तो कहती थी कि दरवाजा पूनियो के लिए खोला है, पर तुम्हारी कतिया मे अभी बहुत पूनिया रखी हुई है। तुम सही बात क्यो नही बताती?' बहन यह बात सुन सकुचा गई। उसने मुनिश्री के प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। मुनिश्री को आहार की जरूरत थी। वे बहन के कथन के आधार पर उसके घर से भिक्षा ले सकते थे। किन्तु उनकी पारदर्शी दृष्टि से कुछ भी छिपा नहीं रहा। उन्होने उस घर से भिक्षा नहीं ली।

आंख की शल्यचिकित्सा

साधु जीवन मे भावनात्मक और मानसिक स्वास्थ्य के साथ शारीरिक स्वास्थ्य भी आवश्यक है। शरीर स्वस्थ न हो तो साधना मे अवरोध आता है। सामान्यत पूरे शरीर की स्वस्थता अपेक्षित रहती है। किन्तु शरीर के एक-एक अवयव पर विचार किया जाए तो आख और पैरो की स्वस्थता को प्राथमिकता दी जा सकती है। पैरो की बीमारी से चलने मे कठिनाई आती है, जब कि पद-यात्रा मुनि जीवन का प्रमुख अग है। आख का स्थान तो सर्वोपरि है ही। आख है तो जगत है और आख नहीं है तो कुछ भी नही है। यह अनुश्रुति प्रसिद्ध है। मुनि मेघकुमार का मन दीक्षा की प्रथम रात्रि मे ही विचलित हो गया। वह भगवान महावीर की सन्निधि मे पहुचा। भगवान ने उसको जातिस्मृति का प्रयोग कराया। उसका तीसरा भव उसके सामने आ गया। उसकी मानसिकता बदली। वह सयम मे स्थिर हुआ। उसने भगवान से निवेदन किया—'भते ! मेरी इन दो आखो के अतिरिक्त मेरा पूरा शरीर सन्तो की सेवा के लिए समर्पित है। वे जैसे चाहे, इसका उपयोग करे।' इस प्रकरण से भी सयम-साधना मे आख का महत्त्व उजागर होता है।

मुनि हेमराजजी की दोनो आखो पर जाला आ गया। उसे मोतियाबिन्द कहा जाता है। उसके कारण उनकी दृष्टि धुधली हो गई। उन्हे पढने-लिखने, चलने-फिरने और काम करने मे कठिनाई का अनुभव होने लगा। वि सं १८९७ में उनका चातुर्मासिक प्रवास सिरियारी था। वहा भोपजी सिघी तथा उनके पुत्र गभीरमलजी ने मुनिश्री के दर्शन किए। उनके साथ वैद्य आनन्दरामजी भी थे। वे शल्यचिकित्सा मे कुशल थे। मुनिश्री की आंखो का निरीक्षण कर वैद्यजी बोले—'मुनिश्री! आपकी आख मे मोतिया है। इसकी एक मात्र चिकित्सा ऑप्रेशन है। आप आज्ञा दें तो मै अपना सौभाग्य मानूगा, सिघीजी ने भी मुनिश्री को ऑप्रेशन कराने के लिए निवेदन किया। उस समय गृहस्थ के द्वारा ऑप्रेशन कराने की परम्परा नहीं थी। इसलिए मुनिश्री ने

कहा—'हम गृहस्थ की सीधी सेवा नहीं ले सकते। वैद्यजी किसी साधु को ऑप्रेशन की विधि बता दे तो हम आपकी देखरेख में इलाज करा सकते हैं।'

वैद्यजी ने मुनिश्री की बात स्वीकार कर ली। उन्होने मुनि सतीदासजी को चिकित्सा की सारी विधि समझा दी। शल्यक्रिया के लिए समय निश्चित हो गया। निश्चित समय पर औषधि, औजार आदि की समुचित व्यवस्था कर ली गई। पूरी तैयारी के बाद ठीक ऑप्रेशन के समय पर वैद्यजी ने मुनि सतीदासजी से कहा—'मुनिजी! आज ऑप्रेशन करे, पर आगे हाथ मेरा रहेगा।' यह बात मुनि हेमराजजी ने सुनी। उन्होने वैद्य के अभिप्राय को समझ लिया। वे बोले—'मेरी आंखों का उपचार हो या नहीं, मै अकल्पनीय कार्य नहीं कराऊंगा, गृहस्थ के हाथ से ऑप्रेशन नहीं कराऊंगा। वैद्यजी और सिंघीजी ने उनको समझाने का प्रयास किया, पर वे अपनी बात पर अडिग रहे। मुनि सतीदासजी ऑप्रेशन करने के लिए तैयार थे, किन्तु वैद्यजी सहमत नहीं हुए। ऑप्रेशन होता-होता टल गया।

चातुर्मास समाप्ति के बाद मुनि हेमराजजी ने सिरियारी से विहार किया। वे आस-पास के गांवों मे विहार करने लगे। युवाचार्य जीत मुनि ने मेवाड से आकर उनके दर्शन किए। उनके साथ मुनि हिन्दूजी थे। कुछ समय बाद मुनिश्री सिरियारी आ गए। वहां आनन्दरामजी और रूपचंदजी—दो वैद्यों ने दर्शन किए। उन्होंने एक बार फिर मुनिश्री से ऑप्रेशन कराने के लिए आग्रह भरा अनुरोध किया। मुनिश्री ने उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की। मुनि हिन्दूजी पास ही बैठे थे। वे बोले—'वैद्यजी मुझे जो विधि बताएंगे, मै उस विधि से ऑप्रेशन कर दूंगा।' वैद्य सहमत हो गए। उन्होने कहा—'हम विधि बता देंगे, आप हिन्दूजी मुनि से ऑप्रेशन करा ले।' इसके लिए मुनिश्री ने अनुमति दे दी।

सारी बात पहले से निर्धारित करके शल्यक्रिया की व्यवस्था की गई। ऑप्रेशन के क्षण आए तो वैद्यो ने मुनि हिन्दूजी को औजार नहीं दिए। क्योकि वे स्वयं ऑप्रेशन करना चाहते थे।

उनकी बदली हुई भावना देख मुनि हिन्दूजी बोले–'आप औजार मुझे दे और ऑप्रेशन की विधि बता दे।' इतना कहने पर भी वैद्यो ने मुनिजी को औजार नहीं दिए। तब मुनि हिन्दूजी बोले–'मै आप लोगो को मुनिश्री की आख के हाथ नहीं लगाने दूगा। जो बात पहले निश्चित हुई है, उसके अनुसार आप मुझे औजार देगे तो मै ऑप्रेशन कर दूंगा। यदि आपकी इच्छा न हो तो फिर ऑप्रेशन ही नहीं होगा। हम मुनिश्री की आजीवन सेवा करेगे। आप किसी बात का विचार न करे।

मुनि हेमराजजी की दृढता और मुनि हिन्दूजी के साहस ने दोनो वैद्यो को अभिभूत कर लिया। उन्होने ऑप्रेशन की विधि बताते हुए मुनि हिन्दूजी के हाथो मे औजार थमा दिया। उन्होने पूरी सावधानी के साथ सफल शल्यक्रिया की। आखो से जाला उतर गया। दृष्टि साफ हो गई। दोनो वैद्यो ने मुनि हिन्दूजी की मुक्त मन से प्रशसा की। आखिर उन्होने विनोद की भाषा मे कहा-'अडक (अनजान) वैद्य के हाथ से आंखें ठीक हो गई, इसे मुनिश्री का पुण्य-प्रभाव समझना चाहिए।' लगभग पौने चार वर्ष तक मोतियाबिन्द रहने के बाद वि स १८९७ वैसाख कृष्णा ६ के दिन सफल शल्यक्रिया से मुनिश्री को पुन नेत्रो की ज्योति उपलब्ध हुई।

आखो का ऑप्रेशन कराने के पश्चात मुनिश्री ने आचार्यश्री रायचदजी के दर्शन किए। आचार्यश्री ने मुनिश्री से कहा–'आप एक वर्ष तक–'चदपण्णत्ती' सूत्र की दूसरी गाथा–'नमिऊण असुर-सुर----' का स्मरण करे।' मुनिश्री ने आचार्यश्री की आज्ञा स्वीकार कर एक वर्ष से कुछ अधिक समय तक उक्त गाथा का स्मरण किया। नेत्रो की ज्योति उपलब्ध होने से मुनिश्री की यात्रा मे होने वाला अवरोध दूर हो गया। उसके बाद लगभग सात वर्षों तक उन्होने ग्रामानुग्राम विहार कर लोकोपकार किया।

कुशल चर्चावादी

परोक्ष ज्ञान के दो प्रकार है मतिज्ञान और श्रुतज्ञान। मतिज्ञान मूक होता है और श्रुतज्ञान शब्दात्मक होता है। मतिज्ञान केवल ज्ञाता को ही ज्ञेय की प्रतीति कराता है। श्रुतज्ञान से ज्ञाता और श्रोता दोनो का बोध विशद बनता है। इस दृष्टि से श्रुतज्ञान को मतिज्ञान से अधिक उपयोगी माना जा सकता है। श्रुतज्ञानी को चक्षुष्मान माना गया है—

चक्षुष्मन्त त एवेह, ये श्रुतज्ञानचक्षुषा।
सम्यक् सदैव पश्यन्ति, भावान् हेयेतरान् नरा ।।

जो व्यक्ति श्रुतज्ञान रूप आख से हेय और उपादेय भावो को सम्यक् प्रकार से देखते है, वे व्यक्ति ही चक्षुष्मान कहलाते है।

अध्ययन-अध्यापन की परम्परा का सम्बन्ध श्रुतज्ञान के साथ है। इसी तरह धर्मचर्चा की बात भी श्रुतज्ञान से जुडी हुई है। जिस व्यक्ति का श्रुतज्ञान जितना निर्मल होता है, वह उतनी ही अच्छी धर्मचर्चा कर सकता है। कुछ लोग तत्त्व को बहुत गहराई से जानते है, किन्तु दूसरो को समझाने के प्रसग मे वे सक्षम नहीं होते। उन्हे साधारण-सा प्रश्न भी पूछ लिया जाता है तो वे घबरा जाते है। जो तत्त्वज्ञ व्यक्ति युक्तियो के सहारे गभीर-से-गंभीर बात दूसरो के गले उतार देते है, वे कुशल चर्चावादी कहलाते हैं।

प्राचीन काल में भिन्न-भिन्न सम्प्रदायो के तत्त्वज्ञानी आपस मे मिलते थे और सैद्धान्तिक मतभेदो को लेकर चर्चा करते थे। कुछ लोग तत्त्व को समझने समझाने के लिए चर्चा करते और कुछ लोग जय-पराजय की भावना से चर्चा करते। जय-पराजय की भावना चर्चा के उद्देश्य को अप्रशस्त बना देती है। स्वयं की या सामने वाले व्यक्ति की ज्ञानवृद्धि अथवा तत्त्व की सम्यक् अवगति चर्चा का प्रशस्त उद्देश्य है

स्वामीजी को आकृष्ट करने वाले गुण

स्वामी भीखणजी विशिष्ट चर्चावादी थी। उनकी अपनी कुछ मौलिक स्थापनाए थीं। उनकी स्थापनाओ ने तत्कालीन जैन सम्प्रदायों में व्यापक हलचल पैदा कर दी थी। उन स्थापनाओं को निरस्त करने के लिए उनका व्यापक विरोध हुआ। स्वामीजी की स्थापनाएं जिनवाणी पर आधारित थीं। जैन आगमों का उन्होने गभीर अध्ययन किया। उसके आधार पर वे प्रत्येक स्थापना को यौक्तिक ढंग से प्रतिपादित करने मे समर्थ थे। उनको उस समय के दिग्गज साधुओ और साधारण लोगो को तत्त्व समझाने का मौका मिला। उनको अनेक बार चर्चा के लिए चुनौतिया मिलीं। वे कभी घबराए नहीं। उनकी स्थापनाओ का आधार स्पष्ट था। इसलिए वे चर्चा के हर प्रसंग मे सफल हुए।

मुनि हेमराजजी को गृहस्थ जीवन मे बचपन से ही स्वामीजी के सान्निध्य मे बैठने और तत्त्वज्ञान की बातें सुनने का मौका मिलता रहा। उनकी बुद्धि प्रखर थी। सूत्र-सिद्धान्त के गभीर रहस्य समझने मे उनकी रुचि थी। उनकी ग्रहणशक्ति और धारणाशक्ति अच्छी थी। एक बार जिस बात को सुन लेते, उसे वे भूलते नहीं थे। लोगों को धर्म का तत्त्व समझाने मे उन्हे आनन्द की अनुभूति होती थी। वे कुशल चर्चावादी थे। गृहस्थ जीवन मे उन्होंने अनेक व्यक्तियों को समझाकर गुरु-धारणा कराई और अनेक बार साधुओं तथा गृहस्थो के साथ चर्चा की।

सामायिक जीव या अजीव

एक समय था जब योद्धा को प्रतीक्षा रहती कि कब युद्ध का प्रसग आए और कब उसकी फडकती हुई भुजाओं को अपने करतब दिखाने का अवसर मिले। एक वादी को प्रतीक्षा रहती थी कि कब चर्चा का प्रसंग आए और कब उसके तत्त्व-ज्ञान का उपयोग हो। मुनि हेमराजजी अपने युग के वादी सन्तो मे एक थे। उनका यह गुण नैसर्गिक था। वे गृहस्थ जीवन में भी समय-समय पर उपाश्रयो और स्थानको मे जाते। अवसर पाकर

वहा गभीर तत्त्वचर्चा करते थे।

एक बार वे स्थानकवासी साधु अमरसिहजी के स्थानक मे गए और चुपचाप बैठ गए। साधुओ ने उनसे पूछा 'आप कहा के रहने वाले है।' उन्होंने कहा—'मै सिरियारी का रहने वाला हूँ'। औपचारिक बातचीत के बाद उन्होने एक प्रश्न किया 'महाराज! सामायिक जीव है या अजीव?' एक साधु ने कहा—'भीखणजी के श्रावको के साथ चर्चा करने की हमारे गुरुजी की आज्ञा नहीं है।'

हेमराजजी ने अचानक बात को मोड दे दिया। कुछ समय बाद दूसरा प्रसंग चलाकर उन्होने फिर पूछा—'महाराज! आपका रजोहरण जीव है या अजीव?' साधु ने उत्तर दिया—'क्या हम इतना भी नहीं जानते, रजोहरण तो अजीव होता है।' साधु की बात सुन हेमराजजी बोले—'आपको भीखणजी के श्रावको से चर्चा करने की आपके गुरु की आज्ञा नहीं है तो भी आपने मेरे प्रश्न का उत्तर कैसे दे दिया? क्या मै यह मान लूं कि रजोहरण की चर्चा सीधी थी इसलिए आपने जबाब दे दिया। सामायिक की चर्चा कठिन थी इसलिए आपने बहाना बना लिया।'

एक श्रावक ने यौक्तिक ढंग से ऐसी बात कही कि साधु को उसके प्रमाद का अनुभव करा दिया और अपने तत्त्वज्ञान का प्रभाव स्थापित कर दिया ऐसी विलक्षण प्रतिभा थी हेमराजजी की।

बास के अंकुर

मुनि हेमराजजी का चर्चाकौशल अनूठा था। उन्हे तत्त्व का ज्ञान तो था ही, साथ ही वे चर्चा मे कभी उत्तेजित नहीं होते थे। इस कारण विरोधी लोगो ने उनको बास के अकुर की उपमा दी। घटना इस प्रकार है।

एक बार हेमराजजी और चन्द्रभाणजी बोहरा चर्चा करने के लिए बाईस सम्प्रदाय के साधुओ के पास गए। हेमराजजी ने उनसे पूछा—'आपके टोले के अतिरिक्त २१ टोलो के साधुओ को आप क्या मानते है? जघन्य दो हजार करोड अच्छे साधु माने जाते है, उनमे मानते है या बाहर? यदि उन्हे दो हजार करोड

साधुओ मे मानते है तो अपने श्रावको को उन्हें वन्दना करने का निषेध क्यों करते है? यदि आप उन्हें दो हजार करोड साधुओ मे नही मानते तो उनकी असाधु के रूप मे प्ररूपणा करनी चाहिए। आप उन्हे साधु मानते है और वन्दना भी छुडाते हैं, इन दोनो बातो मे सगति कैसे होगी?'

हेमराजजी की यह बात सुन साधु आवेश मे आकर बोले—'अरे चादिया! तूने यह क्या किया? शोभाचन्द के बेटे होकर यह क्या मार्ग पकडा है? हेमराजजी शान्त रहे। वे धैर्य के साथ चर्चा को आगे बढाने लगे। पर साधु उनको सुनने की स्थिति मे नहीं थे। वे जोर-जोर से बोल रहे थे। इस पर निकट बैठे कुछ लोगों ने कहा—'महाराज! ये तो शाति से धीरे-धीरे बोल रहे है, आप जोर से क्यों बोलते है?' इस पर साधु बोले—'तुम लोग जानते नहीं। यह धीरे-धीरे बोलता है, पर बांस के अकुर की तरह है। बास का अकुर बहुत नरम होता है, पर बिजली कडकती है तब जमीन को भेदकर ऊपर आ जाता है। और छेद डालता है।' ऐसा कहने पर भी हेमराजजी शान्त रहे। वे चन्द्रभाणजी के साथ लौट आए।

निषेधात्मक चिन्तन क्यों?

एक बार (वि स १८४९) हेमराजजी भीमजी खांटेड के साथ 'बीलाडा' गए। वहा शीतलदासजी के टोले के साधु हीरजी आए हुए थे। वे दोनो उनके पास गए। हीरजी ने पूछा—'तुम कहा से आए हो?' भीमजी ने कहा—'सिरियारी से'। हीरजी का दूसरा प्रश्न था—'तुम्हारे गुरु कौन है?' भीमजी सकपकाकर बोले—'वहा भीखणजी के साधु है, मै उनके पास जाता हूं वहां जयमलजी की साध्वियां है, उनके पास भी जाता हू।'

हीरजी ने यही प्रश्न हेमराजजी से पूछा तो उन्होंने कहा—'मेरे गुरु है पूज्यश्री भीखणजी स्वामी।' हीरजी बोले—'इतने जोशीले शब्दो मे बोलते हो, क्या कोई चर्चा करने का मन है?' हेमराजजी ने कहा—'आपकी इच्छा हो तो मै तैयार हू।' हीरजी ने प्रश्न किया—'एक घर मे गाये जलती थीं। किसी ने उस घर का कपाट

खोल दिया। उस व्यक्ति को क्या हुआ?' हेमराजजी ने हीरजी से पूछा–'महाराज! आप कपाट खोलते है या नहीं?' हीरजी बोले–'हम तो खोल देते है।' हेमराजजी ने कहा–'कब गाये जले और कब मै उन्हे बाहर निकालू–यह निषेधात्मक चिंतन है। मेरी दृष्टि मे ऐसा सोचना ही अच्छा नहीं है। मनुष्य का चिन्तन यह होना चाहिए कि कब सन्तो का समागम हो, कब व्याख्यान सुनूं, कब उन्हे आहार पानी का शुद्ध दान दू, कब सामायिक पौषध आदि करूं इस प्रकार का चिन्तन तो अच्छा है। गायों के जलने की बात सोचना ही अनुचित है।' हेमराजजी की यह बात सुन हीरजी मौन हो गए।

साधुत्त्व खण्डित्त कैसे हुआ?

हीरजी साधु थे। एक गृहस्थ श्रावक चर्चा-बोल मे उन्हे निरुत्तर कर दे, यह उनके स्वाभिमान पर आघात था। वे इसका प्रतिशोध लेना चाहते थे। उन्होने दूसरी चर्चा का प्रारंभ करते हुए कहा–'तुम्हारे गुरु भीखणजी मानते है कि थोडा-सा दोष सेवन करने से साधुता खण्डित हो जाती है। पर यह कथन उचित नहीं लगता। मै इस बात को एक उदाहरण के माध्यम से स्पष्ट कर रहा हू।

एक साहूकार के बहुत बडा व्यापार था। देश-विदेशो मे उसके जहाज चलते थे। एक बार उसके देशान्तर से माल आया। उसने ४८ कोठरियो मे सारा माल भर दिया। एक याचक आया। उसने साहूकार की प्रशंसा की। साहूकार खुश हुआ। उसने ४८ कोठरियों के तालो की चाबिया याचक के सामने रखते हुए कहा–'जो इच्छा हो एक चाबी उठा लो। इस चाबी से खुलने वाली कोठरी मे जो भी माल निकलेगा, वह तुम्हारा हो जाएगा।' याचक ने एक चाबी उठाकर कोठरी खोली, उसमे सींदडे–जहाजो के बान्धने के लगर थे। याचक हताश हो गया। वह दीनता के साथ बोला–'सेठजी! मै ही अभागा हू तो आप क्या कर सकते है? आपने पूरी उदारता से मुझे मनचाहा दिया। किन्तु मेरे भाग्य मे ये सींदडे ही लिखे है।'

साहूकार ने अपने मुनीम से पूछा–इन सींदडो की कीमत क्या होगी? मुनीम हिसाब लगाकर बोला–लगभग ४८ हजार। साहूकार ने मुनीम को निर्देश दिया कि याचक को सींदडों की पूरी कीमत दे दी जाए। मुनि हीरजी ने उक्त घटना के आधार पर कहा–'जब केवल सींदडे ही ४८ हजार रुपयो के है तो सब कोठरियो मे रखे हुए सामान का तो कहना ही क्या? वह तो लाखो करोडो का होगा। उसके समान साधुत्व है, सींदडो के समान थोडा-थोडा दोष है। साधु को प्रमाद नहीं करना चाहिए। पर थोडा-सा प्रमाद हो जाए तो उसमे साधुत्व खण्डित कैसे होगा?'

एक पाटिए की कमी से जहाज डूबा

हेमराजजी ने सोचा कि मुनि हीरजी उदाहरण की भाषा मे बोलते हैं तो इन्हे इसी भाषा मे समझाना चाहिए। उन्होने जहाज का ही उदाहरण देते हुए कहा–'एक जहाज के ८१ पाटिये थे। ४० पाटिये एक ओर, ४० पाटिये दूसरी ओर। बीच का एक पाटिया वहां से हटा दिया गया। जहाज चालक ने उसमें माल भरा। बीच का पाटिया निकल जाने पर भी उसने गभीरता से नहीं लिया। उसका चिन्तन था कि ८० पाटिए ठीक है, एक ही तो नही है, इससे क्या अन्तर आएगा? जहाज चला। थोडी दूर जाकर ही वह डूब गया। इसी प्रकार जो एक भी दोष की स्थापना करता है, उसका साधुत्व सुरक्षित नहीं रह सकता।'

मुनि हीरजी ने हेमराजजी द्वारा प्रस्तुत उदाहरण के विरोध मे एक नया उदाहरण देते हुए कहा–'एक साहूकार ने हजारो रुपए लगाकर हवेली बनाई। वर्षा की ऋतु आई। वर्षा होने लगी। तेज वर्षा के कारण हवेली मे कहीं से पानी टपकने लगा। पानी टपकने से हवेली तो नही गिर जाती। इसी प्रकार थोडे से दोष सेवन से साधुत्व कैसे जा सकता है ?'

हेमराजजी के पास अनुभवो की विपुल सम्पदा थी। वे बोले–'हवेली तो वैसी ही है जैसी आपने बताई। पर उसकी नींव गोबर के उपलो की थी। वर्षा बहुत अधिक हुई। नींव कच्ची

थी, अत हवेली ढह गई। इसी प्रकार साधुत्व तो धारण किया, पर श्रद्धा रूप नींव कच्ची थी। दृढता के अभाव मे दोष की स्थापना करे, दोष को दोष न माने तो उसमे सम्यक् साधुत्व थोडी देर भी नहीं रह सकता।'

चार भाइयों द्वारा गुरुधारणा

इस चर्चा के बाद हेमराजजी ने वहीं बैठकर सामायिक की और 'दया-भगवती' की ढाल गाई। वहां कुछ श्रावक बैठे थे। उन्हे वह ढाल बहुत अच्छी लगी। उन्होने पूछा—'यह ढाल किसकी है?' हेमराजजी ने उत्तर दिया—'स्वामी भीखणजी की है।' लोग बोले—'ऐसी श्रद्धा भीखणजी की है क्या ? यहा भीखणजी आए थे। पन्द्रह दिन ठहरे थे। हम लोग तो उनके पास गए ही नहीं।'

लोगो की रुचि और जिज्ञासा देख हेमराजजी दूसरे दिन फिर वहीं सामायिक करने आए। उन्हें वहां सामायिक करने से मना कर दिया गया। उन्होने बाजार मे जाकर सामायिक की। वहां वे 'नन्दन मणिहारा' का व्याख्यान सुनाने लगे। बहुत लोगो ने व्याख्यान सुना। व्याख्यान उन्हे पसन्द आया। वे कहने लगे—भीखणजी के श्रावक भी ऐसे है तो उनके साधुओ का तो कहना ही क्या? कुछ लोगो ने गहराई से तत्त्व समझने का प्रयास किया। चार भाइयो ने गुरुधारणा की। हेमराजजी सिरियारी चले गए।

हिंसा बिना धर्म

मुनि हेमराजजी गृहस्थ जीवन मे ही चर्चा करने मे निष्णात हो गए थे। वहां अनेक बार चर्चा के प्रसंग आए। हर प्रसंग मे उनकी योग्यता उजागर हुई। दीक्षित होने के बाद तो उनके सामने बार-बार चर्चा के प्रसंग आए। वे सामने वाले व्यक्ति की क्षमता देखते और यथोचित उत्तर देते। बीलावास मे एक देहरावासी भाई बोला—'हिंसा के बिना धर्म नही हो सकता। यदि होता हो तो आप बताएं।'

मुनिश्री ने कहा—'आप यहां बैठे है। बैठे-बैठे ही आप वैराग्यपूर्वक यावत् जीवनभर हरियाली का त्याग कर दे तो धर्म

हुआ या नहीं?' भाई बोला—'यह तो धर्म ही है।' मुनिश्री ने कहा—'क्या इसमे हिसा हुई?' हिसा का तो कोई प्रसंग था ही नहीं तो वह भाई क्या बताता। मुनिश्री ने उसको समझाते हुए कहा—'हिसा बिना धर्म होता है, यह बात स्पष्ट हो गई। हिसा से धर्म होना तो दूर, धर्म उठ जाता है।' अपने कथन की पुष्टि में उन्होंने कहा—'किसी घर मे साधु गोचरी के लिए गए। साधु को देख अत्यधिक प्रसन्न हो कोई व्यक्ति आहार आदि देने के लिए उठकर आने लगा। उसका पैर अन्न के दाने पर टिक जाए तो साधु उसके हाथ से आहार आदि नही लेगे। श्रावक की इतनी हिसा मात्र से वह धर्म नहीं कर पाया। ऐसी स्थिति मे हिसा से धर्म की सभावना कैसे की जा सकती है।

अपने ही शब्दों से पकड़े गए

सरवाड गाव के बाहर नानगजी के शिष्य हीरालालजी मुनि हेमराजजी से मिले। उन्होने पूछा—'नवपदार्थ मे अस्तिभाव कितने? नास्तिभाव कितने? अस्ति-नास्ति-भाव कितने?' मुनिश्री ने कहा—'इस प्रश्न का उत्तर मै दे रहा हूं। पर यदि आपने यह कहा कि प्रश्न का उत्तर ठीक नही है तो आपको सूत्र का पाठ दिखाना होगा।'

हीरालालजी बोले—'आप कहते है साधु को कपाट बन्द नहीं करना चाहिए। यह तथा इस प्रकार के अन्य सब बोल क्या सूत्रो मे उल्लिखित है?' मुनिश्री ने कहा—'हम कपाट बन्द करने का निषेध करते है, वह आपको सूत्र मे दिखा सकते हैं।' इस पर हीरालालजी बोले—'आप सूत्र मे क्या दिखाएगे? अतीत मे अनन्त साधुओ ने कपाट बन्द किए है, वर्तमान मे अनन्त साधु कपाट बन्द कर रहे है और भविष्य मे अनन्त साधु कपाट बन्द करेगे।'

मुनिश्री ने हीरालालजी के उक्त कथन का स्पष्टीकरण मागते हुए कहा—'आप कहते है कि अतीत मे अनन्त साधुओ ने कपाट बन्द किए तो आप जैसे साधुओ ने किए होगे। भविष्य मे भी अनन्त साधु कपाट बन्द कर सकते है। किन्तु आपने वर्तमान की बात किस आधार पर कही? वर्तमान मे तो अनन्त मनुष्य

ही नही है। फिर अनन्त साधु कहा से होगे? और वे कपाट बन्द कैसे करेगे? इस मिथ्या बात के लिए आप 'मिच्छा मि दुक्कडं' स्वीकार करे।' हीरालालजी बोले—'मिच्छा मि दुक्कड तो आपके आता है, इसलिए आप ले।' मुनिश्री ने कहा—'मिच्छा मि दुक्कडं आता तो है आपके और आप हम पर आरोपित करते है। यह तो चोर कोतवाल को डाटे ऐसी बात हो गई।' इस कथन का हीरालालजी सटीक उत्तर नहीं दे पाए। वे अनर्गल प्रलाप कर वहा से चले गए।

रात्रिभोजन का नियम

मुनि हेमराजजी ग्रामानुग्राम विहार करते हुए एक बार सीहावास गए। वहां के कई लोग सम्पर्क मे आए। उनमे एक मानाजी खेतावत भी थे। मुनिश्री ने रात्रिभोजन के दोषो का कथन कर मानाजी को रात्रिभोजन के त्याग की प्रेरणा दी। मानाजी बोले—'महाराज! आपका उपदेश सुनकर इच्छा हो रही है कि जीवन भर रात्रिभोजन का त्याग कर दू। पर मेरे सामने एक समस्या है। रात्रि का त्याग करने से चन्द्रमा नाराज हो जाता है और दिन का त्याग करने से सूर्य नाराज हो जाता है। इसलिए मै नियम कैस लू?'

मुनिश्री मानाजी के कुतर्क को समझ गए। उन्हें प्रतिबोध देने के लिए वे बोले—'आप अमावस्या की रात्रि मे भोजन करने का त्याग कर ले। उसमे न चन्द्रमा होता है और न सूर्य। दोनो की नाराजगी का भय नहीं रहेगा।' मुनिश्री की यौक्तिक बात का खण्डन करने के लिए उनके पास कोई तर्क नहीं था। वे बोले—'अच्छा मुझे त्याग करा दे।'

मुखवस्त्रिका क्यों?

वि सं १८७५ की बात है। मुनि हेमराजजी उन दिनो पाली मे प्रवास कर रहे थे। एक दिन वे गोचरी के लिए जा रहे थे। मार्ग मे संवेगी साधुओ का उपाश्रय था। सवेगी साधु रूपविजयजी उपाश्रय की खिडकी के पास खडे थे। उन्होने आवाज दी—हेम

ऋषि! हेम ऋषि! आओ चर्चा करें।' मुनिश्री उपाश्रय मे आकर बैठ गए। वहां संवेगी श्रद्धा के अनेक श्रावक भी एकत्रित थे। उनके बीच मे मुनिश्री की रूपविजयजी के साथ निम्नाकित रूप मे चर्चा हुई–

रूपविजयजी - आपने मुंह किसलिए बान्धा है ?

मुनिश्री - दया के लिए ?

रूपविजयजी - किसकी दया के लिए ?

मुनिश्री - वायुकाय की दया के लिए।

रूपविजयजी - वायुकाय के जीवों के शरीर चतु स्पर्शी है या अष्टस्पर्शी ?

मुनिश्री - वायुकायिक जीवो के शरीर अष्टस्पर्शी है।

रूपविजयजी - भाषा के पुद्गल चतु.स्पर्शी है या अष्टस्पर्शी?

मुनिश्री - भाषा के पुद्गल चतु.स्पर्शी है।

रूपविजयजी - चतु.स्पर्शी पुद्गलो से अष्टस्पर्शी शरीर का हनन कैसे होगा ? रूई की पूनी गिरने से भैस कैसे मर जाएगी ?

मुनिश्री - पूनी गिरने से तो भैंस नहीं मरती, पर सौ मन की शिला गिरने से तो मरती ही है। भाषा के पुद्गल मूलत चतु स्पर्शी होते है। किन्तु बोलते समय अष्टस्पर्शी नई अचित्त हवा उठती है। उस वायु से वायुकाय के जीवो का हनन होता है।

रूपविजयजी - इस प्रकार जीव मरते हों तो तीनो स्थानों–मुख, नासिका और गुदाद्वार पर भी वस्त्र बाधना चाहिए।

मुनिश्री - तीनो स्थानो से वायुकायिक जीवों की हिसा के प्रसग में उससे बचने की

विधि बतलाई गई है। कायोत्सर्ग प्रतिज्ञा की पाटी तस्स उत्तरीकरणेण मे 'छीएणं, जंभाइएण वायनिसग्गेण' पाठ है या नहीं?

रूपविजयजी - पाठ तो है। पर जीव तो मारने से मरता नहीं। जलाने से जलता नहीं, और काटने से कटता नहीं। ऐसी स्थिति मे हिंसा कैसे होगी?

मुनिश्री - भगवती सूत्र मे आधाकर्मी आहार आदि भोगने वाले को छह काय के जीवो का घातक कहा है। प्रासुक आहार आदि भोगने वाले को छह काय के जीवो के प्रति दयावान बतलाया है। यहा आधाकर्मी भोगने वाले को किस आधार पर हिसक कहा गया है?

रूपविजयजी - मौन

मुनिश्री - आप खुले मुह बोलने मे वायुकाय के जीवो की हिसा नहीं मानते तो मुखवस्त्रिका क्यों रखते है?

रूपविजयजी - हम तो वचन शुद्धि के लिए मुखवस्त्रिका रखते है।

मुनिश्री - तो फिर वचन शुद्धि अधूरी क्यो ? किसी समय मुखवस्त्रिका मुख के आगे रहती है और किसी समय खुले मुह बोलते है। तब यतना के साथ-साथ पूरी वचन शुद्धि भी नहीं रहती।

रूपविजयजी - मौन

मुनिश्री - भगवती सूत्र में महावीर-गौतम का सवाद है। गौतम ने पूछा-'इन्द्र भाषा बोलता है वह सावद्य है या निरवद्य?' भगवान ने

कहा—'इन्द्र खुले मुंह बोलता है तो सावद्य और मुख के आगे हाथ या वस्त्र देकर बोलता है तो निरवद्य।' भगवती सूत्र मे यह बात कही है या नहीं?

रूपविजयजी - कही तो है।

इस प्रकार मुनिश्री ने अपने आगमिक और यौक्तिक ज्ञान अनुभवो और वाक्-कौशल से हर प्रश्न को सहजता से समाहित कर दिया। मुनि रूपविजयजी की ओर से कोई नया प्रश्न सामने नही आया, तब मुनिश्री ने अपनी ओर से उन्हें कुछ प्रश्न पूछे।

तीन मिच्छा मि दुक्कडं

मुनि हेमराजजी ने सवेगी साधु रूपविजयजी के सामने तीन प्रश्न उपस्थित किए—

१ नवपदार्थ मे सावद्य पदार्थ कितने? निरवद्य पदार्थ कितने? और सावद्य निरवद्य दोनों नहीं—वे कितने ?

२ नवपदार्थ मे जीव कितने? और अजीव कितने ?

३ नवपदार्थ किन्हे कहा जाता है ?

रूपविजयजी पूछे गए प्रश्नों पर मनन किए बिना ही बोले—'धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय तो पुद्गल है।

मुनिश्री इस सम्बन्ध में कुछ कहे, उससे पहले उनके सहयोगी सन्त मुनि स्वरूपचन्दजी ने कहा—धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय पुद्गल नही है। क्योकि पुद्गल तो रूपी है और ये अरूपी है। अत आपको मिच्छा मि दुक्कड लेना चाहिए। रूपविजयजी मिच्छा मि दुक्कड लेने की मानसिकता में नहीं थे। उन्होने उस बात को छोडते हुए पुन कहा—'काल जीव और अजीव दोनो है'। मुनिश्री को यह आशा नहीं थी कि उनका तत्त्वज्ञान इतना सतही है। उनके अयथार्थ उत्तर पर टिप्पणी करते हुए उन्होनें कहा—'काल जीव और अजीव कहा है? वह जीव और अजीव पर वर्तता है, पर स्वय अजीव ही है। अत आप दूसरा मिच्छा मि दुक्कड फिर लीजिए।

'मिच्छा मि दुक्कडं' का अर्थ है मेरा दुष्कृत निष्फल हो। रूपविजयजी नहीं मानते थे कि उन्होने कोई पाप किया है। इसलिए 'मिच्छा मि दुक्कड' की बात सुनते ही वे आवेश मे आ गए। उनके हाथ कापने लगे। मुनिश्री के अत्यधिक कृपापात्र मुनि जीतमलजी वहीं थे। वे बोले—'मुनिवर्य! आपके हाथ क्यो काप रहे है? आगमो मे हाथ कम्पित होने के चार कारण बताए है-कम्पन वायु से, क्रोध से, चर्चा मे पराजित होने से और वासना के आवेग से।' यह बात रूपविजयजी को अच्छी नही लगी। वे क्रोध के आवेश मे बोलते रहे। वहा आस—पास के लोग भी अच्छी सख्या मे उपस्थित थे। उनमे मूर्तिपूजक और तेरापथी दोनो ही थे। खैरवा के श्रावक माईदासजी भी वहा थे। उन्होने मुनिश्री से उठने का निवेदन किया। मुनिश्री उठने लगे तो रूपविजयजी ने उनकी पछेवडी का पल्ला पकडते हुए कहा—'चर्चा करिए'। मुनिश्री बोले—'पहले के मिच्छा मि दुक्कड' भी बाकी है। वे ले तो आगे की चर्चा के रास्ते खुले। रूपविजयजी बोले—'मुझे मिच्छा मि दुक्कड लेना है, मै बाद मे ले लूगा।'

मुनिश्री जाने के लिए उद्यत थे, पर रूपविजयजी का आग्रह देखकर वे बोले—'आप अपने आपको पण्डित मानते होगे, पर आपको यह भी ज्ञात होगा कि चौदह पूर्वो के ज्ञाता साधु भी वचन मे स्खलित हो जाते है। फिर मिच्छा मि दुक्कड लेने से आनाकानी क्यो कर रहे है? आप सरलता से 'मिच्छा मि दुक्कड' स्वीकार करे।

रूपविजयजी इस प्रसग को टालना चाहते थे, पर मुनिश्री का कथन भी यौक्तिक था। उसका प्रतिवाद संभव नहीं हुआ तो वे बोले—'मै आपके साथ ही 'मिच्छा मि दुक्कड' ले लूगा। मुनिश्री ने उनको समझाते हुए कहा—'जो साधु वचन मे स्खलना करता है, उसके लिए प्रायश्चित्त का विधान है। स्खलना नही करने वाले को प्रायश्चित्त नहीं आता। आपने स्खलना की है, इसलिए आप 'मिच्छा मि दुक्कडं' ले। मैने वचन मे स्खलना की ही नही, फिर मुझे प्रायश्चित्त क्यो आएगा? मुनिश्री बहुत शान्ति के साथ

रूपविजयजी को अपनी भूल का अनुभव कराने का प्रयास कर रहे थे, किन्तु वे अपने आग्रह पर अडे रहे। उन्होने 'मिच्छा मि दुक्कड' नहीं किया।

चर्चा का कोई निष्कर्ष नहीं निकलने पर मुनिश्री ने वहा समय लगाना उचित नहीं समझा। वे जाने के लिए पुन उठने लगे तो रूपविजयजी ने उनका रजोहरण पकड लिया। मुनिश्री ने कहा–'हमने तो सुना था कि आप क्षमाशील हैं, गंभीर है और अनाग्रही है। आप इस प्रकार खींचातान क्यो कर रहे है? इस पर भी रूपविजयजी ने अपनी पकड नहीं छोडी। वे बोले–'जाओ मत, चर्चा करो।' मुनिश्री को चर्चा मे किसी लाभ की संभावना नही लगी। उन्होने स्पष्ट शब्दो मे कहा–'पहले के 'मिच्छा मि दुक्कडं' लेने पर ही चर्चा होगी। मुनिश्री की स्पष्टवादिता से उनके चेहरे पर रोष के भाव उभर आए। वहां उपस्थित श्रावको ने भी समझा कि अब चर्चा में कोई सार नहीं है। उन्होने मुनिश्री से निवेदन किया–'अब आप पधारें।' रूपविजयजी हताश और खिन्न हो चुके थे। उनकी परेशानी देखकर मुनिश्री ने कहा–'अब आप कहें तो हम जाएं।' यह बात सुन रूपविजयजी बोले–'आप असयती है, मै आपको जाने के लिए कैसे कह सकता हूं?' मुनिश्री ने कहा–'आप मुझे असयती मानते है तो आने के लिए क्यो कहा?' हेम ऋषि! आओ, हेम ऋषि! आओ, इस प्रकार आह्वान करके आपने मुझे बुलाया था। इस स्खलना के लिए आपको तीसरा 'मिच्छा मि दुक्कड' भी आता है।

रूपविजयजी 'मिच्छा मि दुक्कडं' लेने के लिए सहमत नहीं हुए तो मुनिश्री वहां से उठकर अपने स्थान पर चले गए। इस चर्चा-प्रसंग ने मूर्तिपूजक श्रावक समाज मे भी मुनिश्री के ज्ञान और व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव पडा।

अकारण कुत्सित विचार क्यों?

चेलावास मे हीरजी नामक यति रहते थे। वे तेरापन्थ के प्रति बहुत द्वेष रखते थे। एक बार वे तेरापन्थ के बारे मे उलटी-सीधी बाते कर रहे थे। उस समय मुनि हेमराजजी वहां

पहुच गए। उन्होने विनोद करते हुए पूछा—'यतिजी! आपको राजा की आज्ञा मिल जाए कि आप अपनी इच्छा हो, वह काम कर सकते है। तो आप क्या करेगे?' यतिजी बोले—'जिस दिन मुझे ऐसी आज्ञा मिल जाएगी, उस दिन मै सभी ढूढियो (स्थानकवासी और तेरापन्थी सभी साधुओ) को समाप्त कर दूगा।'

मुनिश्री ने यतिजी को कुरेदते हुए कहा—'आप में और मुझ मे आपस मे अच्छा स्नेह है, सौहार्द है। आप कम से कम मुझे तो छोड ही देगे। यतिजी बोले—'सबसे पहले तो मै तुम्हे ही मारूगा। मुनिश्री मुस्कराते हुए बोले—'यतिजी! आपका यह मनोरथ कभी पूरा होने वाला नहीं लगता। आप इस प्रकार हिसा की भावना रखकर बिना मतलब ही कर्मो का बधन क्यो करते है? अकारण कुत्सित विचार रखने से आपको क्या मिलेगा?'

अव्रत किस ओर रही?

सिरियारी की घटना है। वहा मुनि हेमराजजी पधारे। वहां उनकी अन्य सम्प्रदाय के एक साधु के साथ मुलाकात हुई। साधु ने मुनिश्री से पूछा—'भीखणजी की रचनाओ मे एक पद्य है—

साध नै श्रावक रतनां री माला,
एक मोटी दूजी नान्ही रे।
गुण गूंथ्या च्यारू तीरथ ना,
अव्रत रह गई कानी रे।
चतुर! विचार करी नै देखो-।।

इसमे अव्रत एक तरफ रह गई बताया है। वह अव्रत कहा रही? दाई ओर या बाई ओर?

मुनिश्री ने प्रश्न के उत्तर मे कहा—जीव के असख्य प्रदेश होते है। उन असख्य प्रदेशो मे ही अव्रत है और असख्य प्रदेशो मे ही व्रत है। गुण दोनो के भिन्न-भिन्न है। श्रावक के जितनी सीमा तक त्याग है, वह व्रत है। जो खुलावट है, वह अव्रत है। इसलिए अव्रत व्रत से भिन्न है। स्वामीजी के द्वारा अव्रत को एक ओर कहने का तात्पर्य यह है।

असत्य क्यों बोले?

मुनि हेमराजजी उन दिनो पाली मे प्रवास कर रहे थे। एक बार वे स्थानकवासी साधु टीकमजी के साथ चर्चा करने उनके स्थानक मे गए। वहा एक मकोडा घूम रहा था। टीकमजी के साधु सवाई ने मकोडे की ओर इगित करते हुए कहा–हेमजी! मकोडा, मकोडा।

टीकमजी ने इसी बात को चर्चा का मुद्दा बनाते हुए पूछा–हेमजी! इसने आपको मकोडा बताया। इससे क्या हुआ धर्म या पाप?

मुनिश्री ने कहा–'इसने मुझे मकोडा क्यो बताया? मुझे हिसा के पाप से बचाने के लिए या मकोडे को बचाने के लिए?

टीकमजी बोले–आपको पाप से बचाने के लिए। कदाचित असावधानी मे मकोडा मर गया तो हेमजी पाप के भागी होगे, यह सोचकर बताया है।'

मुनिश्री ने उसी समय सवाई से पूछा–'तुमने मुझे मकोडा क्यो बताया? बेचारा मकोडा मर जाएगा, यह समझकर बताया या और कुछ समझकर? मुनिश्री की बात सुन सवाई बोला–'हेमजी! बात तो यही है। मैने समझा कि बेचारा मकोडा मर जाएगा। इसलिए आपको सूचित किया।

इस बार मुनिश्री ने टीकमजी की ओर अभिमुख होकर कहा–टीकमजी! आप सवाई के बदले असत्य क्यो बोले? यह तो कहता है कि मकोडे को बचान मे क्या है? आपको उसकी जानकारी नही है। ऐसी स्थिति मे आपने बिना मतलब असत्य का दोष क्यो लगाया?

दो चावल

मुनि हेमराजजी का जीवन-वृत्त बहु आयामी है। उसका एक आयाम है धर्म चर्चा के प्रसंग। ये प्रसंग जितने रोचक है, उतने ही प्रेरक और ज्ञानवर्धक है। जिस युग में अध्ययन-अध्यापन की विशेष सुविधा नहीं थी, उस युग मे ज्ञान के धरातल की ठोसता

एक बडी उपलब्धि मानी जा सकती है। मुनिश्री पढने के लिए विद्यालय गए? इस प्रश्न पर इतिहास मौन है। उन्होने तर्कशास्त्र का विधिवत् अध्ययन किसी महाविद्यालय मे किया होगा, ऐसी सभावना भी नहीं की जा सकती। क्योकि वह युग महाविद्यालयो और विश्वविद्यालयो का नहीं था। फिर भी मुनिश्री को तर्कशास्त्र का गभीर ज्ञान था। सभावना की जा सकती है कि उन्होने भिक्षु महाविद्यालय मे तर्कशास्त्र पढा हो। स्वामी भीखणजी का उन पर विशेष अनुग्रह था। उन्होने प्रवचनो, वार्ताओ और चर्चा-प्रसगो मे तत्त्वदर्शन के एक-एक रहस्य खोलकर प्रस्तुत किए। मुनिश्री बचपन से ही तत्त्व-रसिक थे। उनमे ग्रहणशीलता भी थी। उन्होने उन रहस्यो को समझा ही नहीं, उनके आधार पर दूसरों को तत्त्व समझाने का काम प्रारभ कर दिया। लगभग छह दशको की अवधि मे उनके सामने तत्त्वचर्चा के सैकडो प्रसग उपस्थित हुए होगे, उनमें से चुने हुए कुछ प्रसगो का यहा उल्लेख हुआ है। इनके आधार पर मुनिश्री के चर्चा कौशल को परखा जा सकता है।

दो चावलो को देखकर पूरी हाडी के चावलो के पकने का ज्ञान किया जा सकता है। इसी प्रकार इन थोडे-से चर्चा-प्रसगो के आधार पर मुनि हेमराजजी की अद्‌भुत क्षमता को परखा जा सकता है।

जीवन का आखिरी पड़ाव

मेवाड़ से मारवाड़

वि स १९०४ मे मुनि हेमराजजी का चातुर्मास्य आमेट में था। चातुर्मास्य पूरा होने पर उन्होने काकरोली में ऋषिराय के दर्शन किए। वहा कुछ दिन रहकर मुनिश्री आचार्यश्री के साथ धोइन्दा गए। धोइन्दा से नाथद्वारा, सीसोदा, काकरोली, भाणा, तासोल आदि गावो मे होते हुए वे केलवा गए। उस वर्ष युवाचार्यश्री जीतमलजी का चातुर्मासिक प्रवास जयपुर था। चातुर्मास्य के बाद वे जयपुर से भीलवाडा होते हुए केलवा आए। मुनिश्री के दर्शन कर वे बहुत प्रसन्न हुए। वहा मुनिश्री ने उनको प्राचीन घटनाए लिखाई। युवाचार्यश्री वहा से विहार कर मारवाड की ओर चले गए।

मुनि हेमराजजी केलवा से लावासरदारगढ होते हुए पुन आमेट गए। वहा उन्होने मारवाड जाने का निर्णय लिया। मुनिश्री के इस निर्णय से मेवाड के श्रावक अनमने हो गए। उन्होंने मुनिश्री को मेवाड मे रहने के लिए आग्रहपूर्ण अनुरोध किया। मुनिश्री अपने निर्णय पर अडिग रहे। वे आमेट से कमेरी, कुवाथल, दोलाजी का खेडा आदि गावो का स्पर्श करते हुए देवगढ पहुचे। वहा नाथद्वारा के प्रसिद्ध श्रावक मयाचन्दजी के पुत्र फोजमलजी तलेसरा ने दर्शन किए। उन्होने मुनिश्री को मेवाड मे रहने का निवेदन किया। मुनिश्री का मानस नही बदला। फोजमलजी ने अधिक आग्रह किया तो मुनिश्री बोले—'हम मारवाड की ओर काल के खींचे हुए जा रहे है तो भी कुछ पता नही।' मुनिश्री का यह कथन किसी आभास के आधार पर हुआ होगा। उनका वह आभास चातुर्मास से पहले ही सच मे बदल जाएगा, यह किसने सोचा था? देवगढ मे साप्ताहिक प्रवास करके मुनिश्री पीपली गए। जेठ का महीना था। भयकर गर्मी थी। मुनिश्री गर्मी की परवाह न करते हुए घाटे से उतरे। वि सं १९०४ ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्थी को वे सिरियारी पहुच गए। मुनिश्री के आगमन

के सवाद सुन काठा सभाग में विहरण करने वाले साधु-साध्वियो को बहुत प्रसन्नता हुई। वहा के श्रावक-श्राविकाओ के मन उल्लसित हो उठे। सिरियारी के लोगो की खुशी का तो अनुमान लगाना ही कठिन था। पाली के श्रावको को सूचना मिली तो वहा से काफी लोग दर्शन करने आए।

श्वास का प्रकोप

मुनि हेमराजजी के आगमन से सिरियारी के धार्मिक वातावरण मे निखार आ गया। मुनिश्री सिरियारी की धरती पर पले- पुसे थे। उनका वहा के सब लोगो से सम्पर्क था। सिरियारी मे उन्होने चार चातुर्मास्य भी किए। उनके व्याख्यान का जनता पर विशेष प्रभाव था। प्रात, मध्याह्न और रात्रि मे नियमित रूप से व्याख्यान, स्वाध्याय, तत्त्वचर्चा आदि चलने से श्रावक समाज मे अच्छी जागृति आ गई।

जेठ कृष्णा चतुर्थी से द्वादशी तक सारे कार्यक्रम नियमित रूप से चले। जीवन के आठवें दशक का पूर्वार्द्ध पूरा करने पर भी उनकी जीवनचर्या पर वृद्धावस्था का प्रभाव नहीं था। वे खडे-खडे प्रतिक्रमण करते थे। त्रयोदशी के दिन थोडा-सा श्वास-प्रकोप हुआ। मुनि श्री ने उसको गंभीरता से नहीं लिया। चतुर्दशी के दिन युवाचार्यश्री जीतमलजी ने मुनिश्री के दर्शन किए। युवाचार्यश्री मेवाड से मारवाड आए थे, तब उनको कल्पना ही नहीं थी कि मुनिश्री से इतना जल्दी मिलना हो जाएगा। मुनिश्री मारवाड आ गए तो सहज रूप से वह सयोग मिल गया। युवाचार्यश्री ने स्वास्थ्य के बारे मे पूछा। मुनिश्री बोले—कोई विशेष बात नहीं है। श्वास का हल्का-सा प्रकोप हुआ है।

साध्वी सरदारांजी को सीख

साध्वी सरदाराजी ने जेठ कृष्णा चतुर्दशी को मुनि हेमराजजी के दर्शन किए। मुनिश्री ने उनको दो शिक्षाए दीं—

१ दिन के पश्चिम प्रहर मे अधिक लम्बा विहार नहीं करना।

२ कोई साथ जाने वाला न हो तो विहार नहीं करना।

मुनिश्री के स्वास्थ्य के सम्बन्ध मे बात चली तो मुनिश्री ने साध्वी सरदाराजी से कहा—'इस समय मै अस्वस्थ हू। कहीं ऐसा न हो कि जीतमल यहा से विहार कर दे। मेरी इच्छा है कि अभी वह मेरे पास रहे।' मुनिश्री की बात सुन साध्वीश्री बोली—'आप मन मे सदेंह क्यो करते है? आपको अस्वस्थ अवस्था मे छोडकर युवाचार्यश्री विहार करे, ऐसा संभव नहीं लगता।' साध्वीश्री ने मुनिश्री को एक नई पछेवडी भेट की। मुनिश्री पछेवडी हाथ मे लेकर बोले—'सरदाराजी ! तुम्हारे हाथ की यह आखिरी भेट ले रहे है।'

दूसरे दिन साध्वी सरदाराजी को सिरियारी से विहार करना था। विहार से पहले वे दर्शन करने गईं तो मुनिश्री ने उनको वहा कुछ दिन रुकने के लिए कहा। साध्वीश्री बोली—हमारे संघ की विधि के अनुसार मुझे यहा एक रात से अधिक नहीं रहना है।' इस पर मुनिश्री ने कहा—'तुम्हारा कहना ठीक है। किन्तु हर विधि का पालन द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अनुसार ही होता है। अस्वस्थता की ऐसी स्थिति में यहा रहना चाहो तो विधि का अतिक्रमण नहीं होगा। यदि तुम्हारी रहने की इच्छा न हो तो विहार कर दो, पर एक बार तुम्हे वापस आना है। सभव हो तो जेठ शुक्ला द्वितीया के दिन जल्दी आ जाना।' उक्त निर्देश के साथ मुनिश्री ने साध्वीश्री को सिरियारी से विहार करा दिया। साध्वीश्री को पुन. आने के लिए बलपूर्वक कहना और द्वितीया के दिन का संकेत करना—इन दो बातों के आधार पर यह अनुमान हो सकता है कि मुनिश्री को अपने आखिरी समय का आभास हो गया था। द्वितीया को उनके स्वर्गवास के बाद इस तथ्य की पुष्टि भी हो गई।

एक कल्पना जो साकार नहीं हुई

जेठ कृष्णा अमावस्या के प्रात. काल तक मुनिश्री के श्वास की गति ठीक रही। प्रात: एवं सायं उन्होंने थोडा भोजन भी किया। सन्ध्या के समय श्वास का प्रकोप भी बढा। श्वास की

गति कभी मंद और कभी तीव्र होने लगी। इससे मुनिश्री के शरीर में असाता बढी, फिर भी उनका समभाव बना रहा। उस दिन वे प्रतिक्रमण खडे होकर नहीं कर पाए। जेठ शुक्ला एकम को प्रात:कालीन प्रतिक्रमण बैठे-बैठे किया।

युवाचार्यश्री मुनिश्री की सेवा में थे। उन्होने कहा–'मुनिश्री! इस बार वि स १९०५ का चातुर्मास्य हम पन्द्रह साधुओ के साथ सम्मिलित रूप मे करे, यह मेरी इच्छा है। इस विषय मे आपकी क्या मर्जी है? पन्द्रह साधु साथ रहेगे तो आहार-पानी की कुछ असुविधा हो सकती है। किन्तु इसका समाधान हमारे पास है। मै अनेक साधुओ के साथ सावन और भाद्रपद मास में एकान्तर तप करने का विचार रखता हूं। उसके बाद आश्विन और कार्तिक मे नदी उतरने से रास्ते खुल जाएगे तो दूसरे गांवो की गोचरी हो सकेगी। युवाचार्यश्री के इस सुझाव को सुन मुनिश्री के मन मे अपार हर्ष हुआ। वे बोले–'जीतमल ! तुम्हारा यह विचार मुझे बहुत पसन्द आया। इस चातुर्मास्य में मै भी ३१ उपवास करने की भावना रखता हूं।

बीमारी में भी जागरूकता

गोचरी के समय साधु गोचरी करके आए। उन्होने मुनि हेमराजजी से आहार करने का अनुरोध किया। मुनिश्री बोले–'आहार करने से श्वास का प्रकोप बढ जाता है, इसलिए आज आहार करने का विचार नहीं है।' युवाचार्य जीतमलजी पास ही बैठे थे। उन्होने कहा–'आहार नहीं करने से श्वास का प्रकोप नहीं होगा, यह नियामकता नहीं है। आप जितनी रूचि हो, उतना ही आहार लें। कुछ लिए बिना शारीरिक दुर्बलता बढेगी।' युवाचार्यश्री के आग्रह पर मुनिश्री ने आहार मे एक लूखी चपाती ली। मध्याह्न मे एक बार श्वास की गति तेज हुई, कुछ समय बाद वह शान्त हो गई। सायकालीन आहार के समय मुनिश्री ने आहार का परित्याग कर दिया।

रात्रि मे व्याख्यान चलता था। गांववासी अच्छी संख्या मे व्याख्यान सुनने आते थे। उस दिन किसी ने कहा–'मुनिश्री का

स्वास्थ्य ठीक नहीं है। अभी व्याख्यान न हो तो क्या आपत्ति है?' यह बात सुन मुनिश्री बोले–'मेरी अस्वस्थता को लेकर व्याख्यान बन्द रखने की अपेक्षा नहीं है। लोग सुनने के लिए आए है, व्याख्यान होना ही चाहिए।' युवाचार्यश्री वहीं उपस्थित थे। मुनिश्री ने उनको व्याख्यान देने का निर्देश दिया। युवाचार्यश्री ने बाहर आकर व्याख्यान शुरु किया। मुनि सतीदासजी मुनिश्री के निकट बैठे थे। मुनिश्री ने उनको कण्ठ मिलाने के लिए बाहर भेज दिया। श्वास की कष्टदायक बीमारी मे भी वे बहुत जागरूक थे। जो काम जिस विधि से होना चाहिए था, उसमे उन्होंने किसी को प्रमाद करने का मौका नहीं दिया।

आखिरी रात का संकल्प

रात्रि के अन्तिम प्रहर मे मुनि सतीदासजी और मुनि उदयचन्दजी ने मुनि हेमराजजी को चौबीसी की १४ ढालें सुनाई। वैराग्यवर्धक और स्तुतिपरक ढालों को सुनते-सुनते वे तन्मय हो गए। उनमे ऐसी मिठास थी जिससे उनका मन मधुरता मे खो गया। उनमे ऐसी प्रेरणा थी कि वे उन्हे कंठस्थ करने के लिए उत्सुक हो गए। उन्होने सन्तों से कहा–'स्वस्थ होने के बाद मेरा चौबीसी याद करने का विचार है।'

युवाचार्यश्री मुनि हेमराजजी के निकट ही बैठे थे। वे पिछले तीन दिनो से मुनिश्री के शरीर की स्थिति का अध्ययन कर रहे थे। श्वास की गति मे वृद्धि के अतिरिक्त शरीर मे कोई बीमारी नहीं थी। जिस समय श्वास का प्रकोप बढता, उस समय वेदना असह्य हो जाती। युवाचार्यश्री ने सोचा–'वर्तमान स्थिति को देखते हुए अन्तिम संलेखना की बात नहीं सोची जा सकती। फिर भी आयुष्य का कोई भरोसा नहीं है। इसलिए ५१ वर्षों की संयम साधना मे हुए प्रमाद की आलोचना करा देनी चाहिए।' इस चिन्तन के साथ युवाचार्यश्री ने पूरे विस्तार से मुनिश्री को आलोचना कराई। मुनिश्री ने पूरी जागरूकता के साथ सारी बाते सुनी। उनकी आत्मा प्रसन्न हो गई। मन हल्का हो गया।

मृत्यु भी साधना है

युवाचार्यश्री ने मुनि हेमराजजी से स्वास्थ्य के बारे मे पूछा। मुनिश्री बोले–'रात को बेचैनी अधिक थी, इसलिए नींद पूरी नहीं आई।' युवाचार्यश्री ने देखा कि रात भर की बेचैनी के बावजूद मुनिश्री अध्यात्मचर्चा से कुछ स्वस्थता का अनुभव कर रहे है। उन्होने उस क्रम को आगे बढाते हुए कहा–'मुनिवर! आप महान है। असात वेदनीय के तीव्र उदय को समभाव से सहन कर कर्मो की निर्जरा कर रहे है। तीर्थकरो का शरीर स्वस्थ होता है, वे जानबूझकर कष्टो को आमंत्रित करते है। साधु जीवन मे सहज समुद्भूत वेदना को सहन करने वाला सुख-शय्या मे शयन करता है।' स्थानाग सूत्र का यह प्रसंग बहुत प्रेरक है।

मुनिश्री की सुनने मे रुचि और एकाग्रता देख युवाचार्यश्री ने उत्तराध्ययन सूत्र मे वर्णित सकाम-मरण की कुछ गाथाए (५-२९-३२) सुनाई। उनसे मुनिश्री को विशेष समाधि का अनुभव हुआ।

मौत को सामने देखकर भी भयभीत नहीं होना, सत्रास का अनुभव नही करना बहुत बडी साधना है। इस सन्दर्भ मे गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी द्वारा विरचित श्रावक-सम्बोध का एक पद्य उल्लेखनीय है–

काम्य हो सब श्रावको को आखिरी सलेखना,
मृत्यु को भी सहज सुन्दर साधना कर देखना,
बिना अनशन के विमन मन मौत कोई मौत है,
जो कलात्मक धर्म-सम्मत मौत सुख का स्रोत है।।

श्रावक के तीन मनोरथो मे अनशनपूर्वक मृत्यु का वरण तीसरा मनोरथ है। साधु के तीन मनोरथो मे भी तीसरा मनोरथ यही है। अनशन के तीन रूप है–प्रायोपगमन, इगिनीमरण और भक्तप्रत्याख्यान। प्रायोपगमन अनशन में आहार-पानी के त्याग के साथ शारीरिक स्थिरता सध जाती है। इगिनीमरण अनशन में देह का परिकर्म छूटता है। भक्तपान अनशन का मुख्य अंग आहार-पानी का परित्याग होता है।

मृत्यु को महोत्सव बनाने की प्रेरणा

युवाचार्यश्री ने जिनकल्प साधना की चर्चा करते हुए आगे कहा–'मुनिवर! जिनकल्पी मुनि वेदनीय कर्म की उदीरणा करते हैं। शरीर में रोग या किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न हो जाती है तो वे उसका प्रतिकार नहीं करते। आख मे फांस गिर जाए, पाव में काटा लग जाए तो वे निकालते नहीं। वे ऐसी परिस्थितियों को न्योतते हैं, जिनसे उनको कष्ट हो। मुनिवर! आपके शरीर मे वेदना है। जिस समय श्वास की गति तेज होती है, पूरा शरीर उससे प्रभावित हो जाता है। फिर भी आपके शरीर मे जिनकल्पी साधु जैसी वेदना संभव नहीं लगती।' यह बात सुन मुनिश्री बोले–'जीतमल! तू ठीक कह रहा है। मेरे शरीर मे इतनी वेदना नहीं है।'

युवाचार्यश्री ने मृत्यु को महोत्सव बताते हुए कहा–'मुनिवर! मृत्यु का भय उन लोगो को होता है, जो तत्त्व को नहीं समझते। आपने शास्त्रो मे पढा है कि मृत्यु महोत्सव है। इस अशुचि शरीर से छुटकारा मौत से ही सभव है। यह शरीर कोई अच्छी वस्तु तो है नहीं, जिसके वियोग से साधक व्यथित हो। मौत को शास्त्रसम्मत और कलात्मक बनाने वाले साधक का भविष्य असख्यात काल तक इस प्रकार के कष्ट से मुक्त रहता है। यह साधना मोक्ष की बुनियाद बन जाती है।'

अध्यात्मरस से भीगी और अन्तर्मुखता बढाने वाली बातें सुन मुनि हेमराजजी का चित्त अत्यधिक प्रसन्न हुआ। उनकी अनुकूलता देख युवाचार्यश्री ने कहा–'मुनिवर! यह शरीर विनष्ट होता है; इसमे आश्चर्य वाली कोई बात नहीं है। यह इतने वर्षों तक टिका रहा, आश्चर्य इसका है। किसी गांव में मेला लगता है। वहां विभिन्न गांवों और शहरो के लाखों मनुष्य एकत्रित हो जाते है। एक महीने बाद मेला पूरा होता है। सब लोग अपने-अपने घर लौट जाते हैं। लोगों का बिखरना आश्चर्य नहीं है। वे एक महीने तक साथ-साथ रहे, यह आश्चर्यकारी है। इसी प्रकार ३ परमाणुओ के मिलने से यह शरीर निर्मित हुआ है। बहुत ·

तक ये पुद्गल एकीभूत होकर रहते है। मृत्यु आने पर सब बिखर जाते है। इसलिए साधक के मन में शरीर छूटने की बात को लेकर कोई चिन्ता नहीं होती।'

आखिरी संवाद

मुनि हेमराजजी युवाचार्यश्री के विद्यागुरु थे। उनकी विद्वत्ता, बात कहने का तरीका, आध्यात्मिक दृष्टिकोण और अवसर पहचानने की क्षमता देख मुनिश्री को सात्विक गौरव का अनुभव हुआ। उनके निर्माण मे मुनिश्री का जो समय और श्रम लगा था, उसे पूर्ण रूप से सार्थक देख वे रोमाञ्चित हो उठे। उन्होने वत्सल भाव से देखा। युवाचार्यश्री अभिभूत हो गए। वे बोले—'मुनिवर! आप महान गुणो के भडार हैं। आप में कितनी सहनशीलता है। आपकी धृति अद्भुत है। आपकी निर्लोभता प्रशस्त है। आपकी विनम्रता सबके लिए प्रेरक है। आपकी ब्रह्मचर्य-साधना विशिष्ट है। आप सत्यप्रज्ञ है। आपने जिनशासन की बहुत प्रभावना की है। आपने बहुत लोगो को सम्यक्त्व और चारित्र का दान देकर सताप से मुक्त किया है। आपने अपनी अग्रिम यात्रा का पाथेय तैयार कर लिया है। आप महान है। आप धन्य है।' मुनि हेमराजजी और युवाचार्यश्री के बीच हुए लम्बे आध्यात्मिक सवाद की वह आखिरी रात थी।

प्रतिक्रमण ध्रुवयोग है

रात भर बेचैनी और अनिद्रा के कारण मुनि हेमराजजी क्लान्त थे। चौबीसी और आगमिक प्रसगो को सुनने से मुनिश्री ने कुछ शान्ति का अनुभव किया। उनकी आखे उनींदी-सी होने लगी। उन्होने मुनि सतीदासजी से कहा—'सतीदास! मुझे नींद आ रही है।' मुनि सतीदासजी बोले—'आप लेटने की कृपा करे।' मुनिश्री ने कहा—'अभी तो प्रतिक्रमण का समय हो रहा है। प्रतिक्रमण करना है।' मुनि सतीदासजी बोले—'आप अस्वस्थ है। ऐसी स्थिति मे प्रतिक्रमण न भी हो तो कोई खास बात नहीं है।' यह बात सुन मुनिश्री ने कहा—'प्रतिक्रमण हमारा ध्रुवयोग है। प्रतिक्रमण तो करना ही है। इसमे अस्वस्थता क्या करेगी?' नींद

लेना तो बहुत दूर की बात है, मुनिश्री लेटे भी नहीं। उन्होने बैठे-बैठे उच्चारण पूर्वक प्रतिक्रमण किया। मुनिश्री की इस जागरूकता से वहा उपस्थित सब सन्तो को एक नया बोधपाठ मिला। यह घटना जेठ शुक्ला एकम की पश्चिमरात्रि की है।

अनशन

जेठ शुक्ला द्वितीया का सूर्योदय हुआ। साधुओं ने मुनिश्री हेमराजजी को वन्दना कर सुखपृच्छा की। मुनिश्री बोले—देव-गुरु के प्रसाद से साता है।' मुनिश्री पचमी समिति से निवृत्त होने के लिए बाजोट से नीचे उतरे। उस समय प्राय सभी सन्त उनकी सेवा में थे। किसी भाई ने श्वास के लिए कोई औषधि बताई थी। एक साधु औषधि लेकर आए और उसे घिसने लगे। युवाचार्यश्री ने मुनि सतीदासजी आदि साधुओ से कहा—'हम पंचमी समिति जा रहे है। वापस आकर औषधि दे देगे।'

युवाचार्यश्री ने पछेवडी ओढी, रजोहरण हाथ में लिया और दुकान से नीचे उतरे। जमीन पर पैर रखते ही उनका चिन्तन बदल गया। उन्हें कुछ आभास हुआ अथवा अदृष्ट की प्रेरणा मिली। उनके मन मे आया—'मुनिश्री का शरीर काफी कमजोर लग रहा है। शौचक्रिया में श्रम होगा। कदाचित् श्वास का वेग बढ जाए तो मुनिश्री को कष्ट होगा। इसलिए औषधि देकर बाहर जाना ठीक रहेगा।' इस चिन्तन ने युवाचार्यश्री को वहीं रोक दिया।

मुनि हेमराजजी शौच से निवृत्त होकर पुन: बाजोट पर बैठे। उस समय उनका शरीर पसीने से तरबतर हो गया। शरीर के पुद्गल क्षीण होने लगे। युवाचार्यश्री ने अवसर देखकर पूछा—'आपकी मर्जी हो तो अनशन करा दूं।' मुनिश्री ने स्वीकृति दी। युवाचार्यश्री ने अविलम्ब अनशन कराकर कहा—'मुनिवर! आपको अर्हतों की शरण है, सिद्धो की शरण है, साधुओं की शरण है और अर्हत्-निरूपित धर्म की शरण है। मुनिश्री ने पूरी जागरूकता से शरण सुने। शरीर की शक्ति क्षीण होती जा रही थी। युवाचार्यश्री उन्हे भेद-विज्ञान—आत्मा और शरीर की भिन्नता की

अनुभूति का प्रयोग करा रहे थे। मुनिश्री शरीर के प्रति सर्वथा निस्पृह हो चुके थे। उनके मन मे न जीने का व्यामोह था और न मृत्यु का भय। क्षणभगुर शरीर के प्रति उनकी सर्वथा अनासक्ति देख युवाचार्यश्री ने उन्हे चारो आहार का प्रत्याख्यान करा दिया।

अनशन स्वीकार करने के बाद लगभग एक घडी (२४ मिनिट) तक मुनिश्री वैराग्यवर्धक बाते सुनते रहे। मुनि सतीदासजी और मुनि कर्मचन्दजी के हाथो के सहारे से मुनिश्री बैठे थे। अन्य सभी साधु उनके आसपास ही थे। श्वास की गति मद होती जा रही थी और भावधारा की निर्मलता बढती जा रही थी। देखते-देखते किसी विशेष कष्ट के बिना मुनिश्री समाधिमरण को प्राप्त हो गए।

वि स १९०४ ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया का दिन। प्रथम-प्रहर का समय। लगभग दो मुहूर्त्त दिन चढने पर तेरापंथ धर्मसंघ के महान स्तम्भ, महामुनि हेमराजजी ने अपनी जीवन यात्रा-सम्पन्न की। साधुओ ने यथाविधि उनके शरीर का व्युत्सर्ग कर चार लोगस्स का कायोत्सर्ग किया। नाथू वैरागी ने उसको सभाला। उस दिन सभी सन्तो ने उपवास किया। दो मुहूर्त्त बाद आचार्यश्री रायचन्दजी वहा पहुच गए। आस-पास के गांवो से कुछ साधु साध्विया भी आई। कुल मिलाकर उस दिन वहा साधु साध्वियो की सख्या ६० हो गई।

जो आज भी अमर हैं

मुनि हेमराजजी का जन्म सिरियारी में हुआ, दीक्षा सिरियारी मे हुई, आखो की शल्य-चिकित्सा सिरियारी मे हुई और अन्तिम अनशन का योग भी सिरियारी को मिला।

> सिरियारी मे जनमिया, सिरियारी व्रत धार।
> सिरियारी मे नेत्र खुल्या, सिरियारी सथार।।

मुनिश्री का गृहस्थ जीवन २४ वर्षों का था और मुनि जीवन ५१ वर्षों का। कुल ७५ वर्ष की अवस्था में वे हर दृष्टि से

सक्रिय रहे। ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना में उनकी सजगता अनूठी थी। मुनिश्री के ज्ञानावरणीय कर्म का विशेष क्षयोपशम था। उनकी धारणा क्षमता बेजोड थी। आत्मा, कर्म, पुनर्जन्म आदि मे उनका विश्वास गहरा था। उनकी आस्था प्रबल थी। उनका चरित्र निर्मल था। वे कष्टसहिष्णु थे। स्वामीजी से प्राप्त शुद्ध विचार और शुद्ध आचार की अवधारणा को उन्होने सदा जीवन्त रखा। मृत्यु का वरण करके भी अमरत्व का वरण करने वाले महामुनि को श्रद्धासिक्त विनम्र प्रणति।